आज़ादी का अमृत महोत्सव

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY

INTERNATIONAL YEAR OF MILLETS 2023

त्रैमासिक पत्रिका

पशुपालन दर्शिका

वर्षः 1, अंकः 2, अक्टूबर-दिसम्बरः 2023

मुख्य संरक्षक

डॉ. रामेश्वर सिंह
कुलपति
बि.प.वि.वि., पटना–14 (बिहार)

संरक्षक

डॉ. ए.के. ठाकुर
निदेशक
प्रसार शिक्षा निदेशालय
बि.प.वि.वि., पटना–14 (बिहार)

मुख्य संपादक

डॉ. योगेन्द्र सिंह जादौन
विभागाध्यक्ष
गव्य प्रसार शिक्षा विभाग, सं०गाँ०ग०प्रौ०सं०, पटना

संपादक

श्री सत्य कुमार
जनसंपर्क पदाधिकारी, बि०प०वि०विवि०, पटना

डॉ. पंकज कुमार
उप–निदेशक (प्रसार), बि०प०वि०विवि०, पटना

सह-संपादक

डॉ. सरोज कुमार
सह–प्राध्यापक, पशु प्रसार शिक्षा विभाग, बि०भी०सी०, पटना

डॉ. पी. के. सिंह
सहायक प्राध्यापक, पशु प्रसार शिक्षा विभाग, बि०भी०सी०, पटना

सुश्री सर्वजीत कौर
सहायक प्राध्यापक, गव्य प्रसार शिक्षा विभाग, सं०गाँ०ग०प्रौ०सं०, पटना

मार्गदर्शक

डॉ. वीर सिंह
निदेशक आवासीय निर्देश–सह–अधिष्ठाता स्नातकोत्तर शिक्षा,
बि०प०वि०विवि०, पटना

डॉ. वी.के. सक्सेना
निदेशक अनुसंधान, बि०प०वि०विवि०, पटना

डॉ. जे.के. प्रसाद
अधिष्ठाता, बि०भी०सी० एवं सं०गाँ०ग०प्रौ०सं०, पटना

डॉ. वी.पी. सैनी
अधिष्ठाता, मात्स्यिकी महाविद्यालय, किशनगंज

डॉ. चंद्राहास
अधिष्ठाता, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज

डॉ. संजीव कुमार
कुलसचिव, बि०प०वि०विवि०, पटना

निर्देश: इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

आभार: संपादक मंडल प्रस्तुत पत्रिका के मुद्रण एवं चित्रण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी व्यक्ति विशेष का आभार प्रकट करता है।

त्रैमासिक पत्रिका
पशुपालन दर्शिका
वर्ष: 1, अंक: 2, अक्टूबर–दिसम्बर: 2023

प्रकाशक:
डॉ० अरविन्द कुमार ठाकुर
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना–800014

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय कैम्पस, पटना – 14
BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY
Bihar Veterinary College Campus, Patna - 14

Tel. : 0612-2222221
Email: vc-basu-bih@gmail.com
vicechancellorbasu@gmail.com

डॉ० रामेशवर सिंह
कुलपति

संदेश

"पशुपालन दर्शिका" के द्वितीय अंक की प्रति आपके समक्ष प्रस्तुत करने में हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। यह पत्रिका हमारे पशुपालन समुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जो उन्हें नवीनतम् जानकारी, उपयुक्त सलाह और समृद्धि की दिशा में मार्गदर्शन करने का प्रयास कर रही है। इस अंक को तैयार करने में हमने खास ध्यान दिया है कि आपको पशुपालन, मुर्गीपालन, डेयरी, मत्स्यपालन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ी जानकारी मिले और आप इसे पढ़ने के बाद और भी सकारात्मक और सृजनात्मक बन सकें।

"पशुपालन दर्शिका" के प्रथम अंक से आपके द्वारा मिले सुझावों को हमने इस अंक में शामिल किया है और प्रयास किया है कि इस पत्रिका के माध्यम से पशुपालन, मुर्गीपालन, डेयरी और मत्स्यपालन से सम्बंधित तमाम सवालों का प्रतिउत्तर आप तक पहुँचे।

हमारी पत्रिका का उद्देश्य पशुपालन सम्बंधित नवीनतम् जानकारियाँ और तकनीकी बदलाव को प्रोत्साहित करना है, राज्य में पशुपालन और इसके सहबद्ध क्षेत्रों में सुधार के लिए आपका सक्रिय सहयोग अपेक्षित है।

अंत में, मैं "पशुपालन दर्शिका" के द्वितीय अंक के प्रकाशन से जुड़े सभी वैज्ञानिकों एवं सम्पादकीय मंडल को शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(रामेशवर सिंह)

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय कैम्पस, पटना – 14
BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY
Bihar Veterinary College Campus, Patna - 14
Email: deebasupatna@gmail.com

संदेश

डॉ० ए.के. ठाकुर
निदेशक प्रसार शिक्षा

प्रिय पाठकगण,

हमें खुशी है कि हमारी पत्रिका "पशुपालन दर्शिका" का प्रथम अंक सफलतापूर्वक प्रकाशित होने के बाद, हम द्वितीय अंक के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। इस पुनरागमन में, हम आपको एक और नवीन और उत्कृष्ट अंक प्रस्तुत करने जा रहे हैं, जो पशुपालन और डेयरी एवं पशुपालन के विभिन्न आयामों में नवीनतम् और महत्वपूर्ण जानकारी साझा करेगा। यह हमारा लक्ष्य है कि अपने पाठकों को हम इस पत्रिका के माध्यम से विशेषज्ञता, तकनीकी नवाचार, और उच्च गुणवत्ता वाली जानकारी साझा करें, ताकि आप पशुपालन से अधिक से अधिक सफलता प्राप्त कर सकें। हम आपके साथ मिलकर इस पत्रिका को एक नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

आपको विधित हो कि भारत की महामहिम राष्ट्रपति महोदया द्वारा बिहार के चतुर्थ रोड मैप का लोकार्पण किया गया, बिहार के कृषि और पशुपालन के क्षेत्र को और अधिक सुदृढ़ करने के उद्देश्य से लागू यह कृषि रोड मैप 2028 तक क्रियान्वित रहेगा, जिसमें कि बिहार के किसान, पशुपालक, मुर्गीपालक, मत्स्यपालक और डेयरी व्यवसाय से जुड़े भाइयों एवं बहनों की आमदनी को बढ़ाने के साथ–साथ उत्पादन बढ़ाने के लिए योजना तैयार की गयी है। इस बदलाव की कड़ी में हमारा भी सार्थक प्रयास रहेगा की हम अपने पशुपालकों की उन्नति में सहायक सिद्ध हों।

इस पत्रिका के माध्यम से, हम तकनीकी समर्थन, पशुपालन क्षमता विकास, और अन्य पशुपालन के क्षेत्र से जुड़ी सेवाएं आप तक पहुँचा रहे हैं साथ ही पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए के लिए आप सभी के आभारी हैं।

निदेशक प्रसार शिक्षा
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

त्रैमासिक पत्रिका
पशुपालन दर्शिका
वर्षः 1, अंकः 1, जुलाई-सितम्बरः 2023

संपादकीय

प्रिय पाठकों,

पशुपालन दर्शिका के द्वितीय अंक में आपका स्वागत है! यह अंक एक नयी प्रेरणा और ज्ञान की धारा का आरंभ करने जा रहा है, जिसका उद्देश्य है पशुपालन और सहबद्ध क्षेत्रों में नवाचार, नवीनतम पद्धतियाँ और अनुसंधानों का परिचय देना। यह पत्रिका आपको पशुपालन के अनगिनत आयामों और संभावनाओं के प्रति जागरूक करने का प्रयास करेगी, ताकि आप न सिर्फ अपने पशुपालन व्यवसाय को बेहतर बना सकें, बल्कि इस क्षेत्र में नए आयाम भी छू सकें।

विश्वविद्यालय के प्रसार शिक्षा निदेशालय का यह पहला कदम पशुपालन के क्षेत्र में एक नयी यात्रा की ओर है। हम न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि पशुपालन के विभिन्न पहलुओं में भी नए दिशानिर्देश प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा मानना है कि पशुपालन केवल एक व्यवसायिक गतिविधि नहीं है, बल्कि यह एक विज्ञान और कला है, जिसमें निरंतर अध्ययन और अनुसंधान के माध्यम से हम नए समृद्धि स्रोत खोज सकते हैं।

इस पत्रिका के माध्यम से, हम आपको विभिन्न प्रकार के पशुपालन तकनीकी, पशु पोषण, और प्रबंधन में नवाचार से अवगत कराएंगे, जो आपके पशुपालन व्यवसाय को नई ऊंचाइयों तक ले जा सकते हैं।

हम इस पत्रिका को आपके सहयोग से संचालित कर रहे हैं और आपसे निवेदन करते हैं कि आप इस पत्रिका में अपने अनुभव, विचार और अन्य योगदानों को साझा करें, ताकि हम सभी एक–दूसरे से सीख सकें और इस क्षेत्र में नए मानदंड स्थापित कर सकें।

धन्यवाद,

संपादकीय मंडल
पशुपालन दर्शिका

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	बिहार में देसी गाय की पंजीकृत नस्लें एवं उनकी विशेषताएँ	जय प्रकाश गुप्ता एवं सोनी कुमारी	01–02
2.	यूरिया मिनरल मोलासेस ब्लॉक (पशु चॉकलेट)	धर्मेन्द्र कुमार एवं दिनेश कुमार	03–05
3.	गांठदार त्वचा रोग (एलएसडी): पहचान एवं निदान	सोनम भट्ट एवं अनिल कुमार	06–07
4.	बकरियों में पी.पी.आर. रोग के कारण, पहचान एवं बचाव	रवि शंकर कुमार मंडल एवं सोनम भट्ट	08–09
5.	गव्य पशुओं में रेक्टो–वेजाइनल विधि द्वारा कृत्रिम गर्भाधान	डी. सेनगुप्ता एवं सुमित सिंघल	10–11
6.	पशुधन व्यवसाय : पशुपालकों की उन्नति का एक मजबूत आधार	दीप नारायण सिंह एवं रंजना सिन्हा	12–13
7.	मवेशियों में किलनी की समस्याएं और समाधान	मृत्युंजय कुमार और पल्लव शेखर	14–15
8.	कुक्कुट प्रसंस्करण (पोल्ट्री प्रोसेसिंग) से प्राप्त कुक्कुट प्रोत्पाद व उनकी उपयोगिता	साधना ओझा एवं मुकेश गंगवार	16–17
9.	गायों और भैंसों में प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया के लक्षण, उपचार और रोकथाम	नीलम कुशवाहा एवं आनंद मोहन	18–20
10.	गाय व भैंस में प्रजनन सामान्य रखने हेतु पशु पालकों के लिए दिशा निर्देश	अंकेश कुमार एवं अनिल कुमार	21–22
11.	पशुधन रोग निदान में शव परीक्षण की भूमिका	कौशल कुमार एवं अजय मुटकुले	23–24
12.	बैकयार्ड कुक्कुट पालन	चन्द्रहास	25–27
13.	जीवन में दूध का महत्व	अनुराधा कुमारी एवं नीरज कुमार सिंह	28–29
14.	मीठे जल की मछलियों में होने वाले रोग, रोकथाम के उपाय एवं उनका उपचार	भारतेन्दु विमल एवं वेद प्रकाश सैनी	30–35
15	बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की प्रसार गतिविधियां	अरविन्द कुमार ठाकुर एवं योगेन्द्र सिंह जादौन	36

बिहार में देसी गाय की पंजीकृत नस्लें एवं उनकी विशेषताएँ

जय प्रकाश गुप्ता एवं सोनी कुमारी
पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना, पटना

संक्षेपः
सदियों से पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग रहा है। राज्य ने पशुधन उत्पादकता बढ़ाने के उद्देश्य से नस्ल सुधार, टीकाकरण और रोग नियंत्रण के लिए कई कार्यक्रम लागू किए हैं। बिहार में पशुओं की नस्लीय विविधता के समुचित अध्ययन की आवश्यकता है। बिहार में गायों की कुछ महत्वपूर्ण नस्लें हैं, जिनमें बछौर, पूर्णिया तथा गंगातीरी गायें प्रमुख हैं। बछौर बिहार की सर्वप्रथम मान्यता प्राप्त गाय की नस्ल जो मूलतः भारवाहक नस्ल हैं। पूर्णिया नस्ल की गायें सूखे की स्थिति में, दूध और खाद के मामले में छोटे और सीमांत किसानों की ग्रामीण आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। गंगातिरी नस्ल की गायें स्थानीय कृषि–जलवायु परिस्थितियों के लिए अनुकूल है, यह नस्ल उष्मीय ताप तथा गर्मी के प्रति काफी सहनशील हैं और संकर पशुओं की तुलना में इनमें आम बीमारियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी क्षमता होती है। बिहार राज्य के पशु आनुवंशिक संसाधन, खासकर गाय मुख्यतः भारवाहक लेकिन कम दूध देने वाली हैं।

सूचक शब्द : बछौर, पूर्णिया, गंगातीरी।

बिहार में देसी गाय की पंजीकृत नस्लें :

बछौर गाय

बछौर बिहार की सर्वप्रथम मान्यता प्राप्त गाय की नस्ल है। बछौर नस्ल की गायों का विस्तार मुख्यतः बिहार के सीतामढी, मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर एवं समीपवर्ती जिलों में है। बछौर गायें बहुत कम दूध देती हैं और मशीनीकरण के युग में इनके बैल भी लगातार अपनी प्रासंगिकता खो रहे हैं। हालाँकि, ऐसा माना जाता है कि बैल बिना थके तथा चारा के आभाव में भी लंबे समय तक काम कर सकते हैं। इनके फार्म पर प्रजनन के लिए चयनित बैलों का उपयोग किया जाता है। यह मूलतः भारवाहक नस्ल के हैं। एक दुग्धकाल में इनका औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 350 लीटर है। बछौर पशु मुख्यतः सफेद तथा भूरे रंगों में मिलते हैं। इन जानवरों के आंख एवं पलकें आमतौर पर काली होती हैं हालाँकि, कुछ जानवरों में सफेद पलकें भी पाई जाती है। अधिकांश जानवरों के सींग छोटे और ठूंठदार होते हैं, जो बाहर, ऊपर और नीचे की ओर मुड़े होते हैं। कुल मिलाकर जानवर मध्यम आकार के सघन (कॉम्पैक्ट) और सीधी पीठ वाले होते हैं। जानवरों को अधिकतर व्यापक–प्रणाली में पाला जाता है और उन्हें कम चारे में निर्वाहन की क्षमता के लिए जाना जाता है। बछौर पशुओं में किसी भी प्रजनन संबंधी विकार की काफी कम घटना देखने को मिलती है। बछौर पशुओं की भार ढोने की शक्ति, बछौर गायों को पालने वाले किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि वे अपनी आजीविका ज्यादातर जानवरों की भार ढोने की क्षमता के माध्यम से अर्जित करते हैं।

मादा बछौर

नर बछौर

छायाचित्र आभारः
राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पूर्णिया गाय :

पूर्णिया गाय मुख्यतः अररिया, पूर्णिया और कटिहार जिलों में पाई जाती है। इसके अलावा किशनगंज, सुपौल और मधेपुरा जिलों के निकटवर्ती क्षेत्र में भी इन्हें देखा जा सकता है। पूर्णिया गायें छोटे आकर के और सुगठित शरीर वाली होती हैं। ये गायें हल्के से लेकर गहरे लाल रंग तक की होती है पूर्णिया नस्ल की गायें सूखे की स्थिति में, दूध और खाद के मामले में छोटे और सीमांत किसानों की ग्रामीण आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन पशुओं के गोबर का उपयोग ईंधन और खाद के रूप में किया जाता है। हालाँकि इन गायों के द्वारा काफी कम मात्रा में दूध प्राप्त होता है लेकिन यह एक परिवार की आवश्यकता को पूरा करने के लिए काफी होता है। चूँकि ये जानवर स्थानीय जलवायु के अनुकूल होते हैं और तुलनात्मक रूप से इनमें रोगों–प्रतिरोधक क्षमता ज्यादा होती है, और गर्मी के प्रति सहनशील होते हैं, इसलिए किसानों के लिए इन जानवरों का प्रबंधन सस्ता एवं सरल हो जाता है।

गंगातीरी गाय :

गंगातीरी नस्ल की गायें ज्यादातर पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगा के मैदानी इलाकों और बिहार राज्य के पश्चिमी हिस्सों में पाई जाती है। बिहार राज्य में, ये गायें ज्यादातर केंद्रीय क्षेत्र में व्यापक रूप में पाई जाती है, जिसमें बक्सर, रोहतास, भोजपुर और कैमूर जिले शामिल हैं, इसी कारण से इन गायों को शाहाबादी भी कहा जाता है। इन जानवरों को वर्ष 2015 में राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (NBAGR), करनाल द्वारा गंगातीरी नस्ल के रूप में एक अलग नस्ल की तरह मान्यता दी गई। इस नस्ल कि गायें स्थानीय कृषि–जलवायु परिस्थितियों के लिए अनुकूलित है। यह नस्ल उष्मीय ताप तथा गर्मी के प्रति काफी सहनशील हैं और संकर पशुओं की तुलना में इनमें आम बीमारियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी क्षमता होती है।

मादा पूर्णिया

नर पूर्णिया

छायाचित्र आभारः राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

मादा गंगातीरी

छायाचित्र आभारः
राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

बिहार क्षेत्र में गंगातीरी मवेशी अधिकतर उन्ही क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ मुख्यतः कृषि एवं कृषक गंगा नदी द्वारा पोषित होते हैं। गंगातीरी मवेशी पूरी तरह से सफेद रंग के होते हैं। इनका आकार मध्यम और शरीर सघन होता है।

बिहार राज्य में पायी जाने वाली गाय की नस्लें मुख्यतः भारवाहक लेकिन कम दूध देनेवाली होती हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि वर्तमान परिदृश्य में हम अपने पशुओं के आनुवंशिक उन्नयन के लिए अन्य नस्लों की मदद लें जिनमें रेड सिन्धी, साहीवाल तथा गीर गायें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

यूरिया मिनरल मोलासेस ब्लॉक (पशु चॉकलेट)

धर्मेन्द्र कुमार[1], एवं दिनेश कुमार[2]
[1]पशु पोषण विभाग, बिहार पशु पशुचिकित्सा महविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना
[2]रांची पशुचिकित्सा महाविद्यालय, रांची, झारखण्ड

संक्षेप:
जुगाली करने वाली पशु को मुख्य रूप से रेशे वाली आहार जैसे कि भूसा, पुआल इत्यादि खिलाकर पाला जाता है. यह आहार असंतुलित होता है, मुख्य रूप से इसमें प्रोटीन, मिनरल एवं विटामिन की कमी होती है जिससे कारण यह सुपाच्य नहीं होता है एवं पशु खाना कम खाता है। इस कमी को पूरा करने के लिए पशु को नाइट्रोजन एवं मिनरल खिलाना चाहिए। चौकलेट में तरल गुड़, यूरिया एवं बहुत सारे खाद्य पदार्थ मिलाये जाते हैं जिससे नाइट्रोजन एवं मिनरल पशुओं को आसानी से उपलब्ध हो जाता है यह भूसे की पाचन क्षमता को बढ़ाता है। वसा की मात्रा बढ़ जाती है, चौकलेट खिलाने से दूध की अपेक्षाकृत फैट में कम वृद्धि होती है तथा चौकलेट चाटने से पशु के मुंह में अधिक लार (सलाइवा) बनता है, जो पेट के लिए बफर का काम करता है, जिसके कारण यह पशु के पेट को न्यूट्रल बनाये रखता है एवं पाचन क्रिया अच्छी होती है। पशु को गैस की समस्या कम होती है. 14% तक दूध उत्पादन में वृद्धि, पहली वार गर्मी में आने की उम्र 17 महीने से घटकर 15 महीने, पहली वार गाभिन होने की उम्र 19 महोने से घटकर 17 महीने होना. पहली बार बच्चा देने की उम्र 31 महीने से घटकर 29 महीने, गाभिन होने के लिए औसत 2 बार गर्भाधान जबकि पहले 2.65, दो बार बच्चे देने के समय 15.7 महीने से घटकर 13.3 महीने तक हो जाता है।

सूचक शब्द : पशु चौकलेट यूरिया, बंधनकारी पदार्थ, चोकर।

परिचय :

गर्मी के दिनों में पशुओं को जब हरा चारा नहीं मिलता है तब ग्रामीण लोग भूसा खिलाकर पशु को पालते हैं, उस समय पशु में प्रोटीन एवं मिनरल की कमी हो जाती है जिसके कारण पशु का दूध उत्पादन कम हो जाता है एवं पशु गर्मी में भी नहीं आता है यानि पशु बाँझपन की समस्या से घिरा रहता है। पशु चौकलेट खिलाने से प्रोटीन एवं मिनरल पशु को मिलने लगते हैं एवं यह भूसे की उपयोगिता बढ़ा देता है जिससे पशु स्वस्थ्य रहता है। भारत वर्ष में जुगाली करने वाली पशु को मुख्य रूप से रेशे वाली आहार जैसे कि भूसा, पुआल इत्यादि खिलाकर पाला जाता है, यह आहार असंतुलित होता है मुख्य रूप से इसमें प्रोटीन, मिनरल एवं विटामिन की कमी होती है एवं इसमे लिग्निन की मात्रा अधिक होती है जिससे कारण यह सुपाच्य नहीं होता है। जिसके कारण पशु खाना कम खाती है एवं उत्पादन भी कम होती है.

इस कमी को पूरा करने के लिए पशु को नाइट्रोजन एवं मिनरल खिलाना चाहिए। तरल गुड़ एवं यूरिया का मिश्रण जिसमें नाइट्रोजन उपलब्ध होता है इसे पशु को खिलाया जाता है, एवं यह मिनरल का भी अच्छा स्रोत होता है.

चौकलेट में कौन से खाद्य पदार्थ मिलाये जा सकते हैं:

चौकलेट में बहुत सारे खाद्य पदार्थ मिलाये जा सकते हैं. लेकिन कौन सा पदार्थ मिलाना है यह खाद्य पदार्थ की उपलब्धता, पोष्टिकता, कीमत इत्यादि पर निर्भर करता है।

फोटो.1- पशु चॉकलेट

मोलासेस (छोवा गुड़): गुड़ के द्वारा उर्जा, एवं बिभिन्न प्रकार के मिनरल मिलते हैं, लेकिन इससे फास्फोरस बहुत कम मात्रा में मिलता है। इसको मनुष्य के आहार के रूप में नहीं लिया जाता है। गुड़ की सुहानी खुशबु होने के कारण यह पशुओं को बहुत स्वादिष्ट लगता है। गुड़ से पशुओं को सूक्ष्म मिनरल एवं विटामिन मिलते हैं। गुड़ की डिग्री ब्रिक्स 80 से अधिक रखने से चौकलेट को कड़ा ठोस बनने में सुबिधा होती है। गुड़ में चीनी की मात्रा को ब्रिक्स कहते हैं।

यूरियाः इससे पशु को नाइट्रोजन मिलता है, जो भूसे के पाचन एवं उपयोगिता को बढ़ाती है। जो कि पशु के पेट में अमोनिया के रूप में बदल जाता है तथा जो की गुड़ के साथ मिलकर पेट में जीवाणु की संख्या को बढ़ाता है, जिससे पशुओं में पाचन क्षमता बढ़ती है। यूरिया भूसे एवं पुआल की खाने की क्षमता को 40% बढ़ा देता है इसके साथ–साथ इसकी पाचन क्षमता भी 20% तक बढ़ जाती है. यूरिया अधिक मात्रा में जहरीला हो जाती है इसलिए यूरिया पशु को प्रत्यक्ष रूप से नहीं खिलानी चाहिए. चौकलेट के द्वारा यूरिया नियंत्रित मात्रा में पशु को मिलता है।

चोकर एवं राईस ब्रानः इसके बिभिन्न उद्येश्य है, इससे फैट, प्रोटीन एवं फास्फोरस मिलते हैं, यह गुड़ की नमी को सोखता है जिससे चौकलेट को ठोस बनाने में सहायता मिलता है. इसके बदले छोटे छोटे टुकडे बगास के या बादाम के छिलके को छोटा –छोटा टुकड़ा कर मिलाई जा सकती है।

मिनरलः मिनरल जरुरत के अनुसार मिलाना चाहिए।

नमकः जरूरत के अनुसार इसको चौकलेट में मिलाया जाता है।

बंधनकारी पदार्थ : चौकलेट को ठोस बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है, इसके लिए बिभिन्न पदार्थ जैसे कि मैग्नेशियम ऑक्साइड, कैल्शियम ऑक्साइड, कैल्शियम हाईड्रोक्साईड एवं सीमेंट मिलाई जाती है।

बिभिन्न प्रकार के रसायनः जैसे की कृमि की दवा चौकलेट में मिलाई जाती है। चौकलेट में बायपास फैट मिलाने से भूसे को पचाने की क्षमता बढती है. इसके अलावा रसायन जो पशु के पेट के लिए लाभदायक होता है उसे इसमें मिलाया जा सकता है।

इसलिए पशु चौकलेट पशु के साथ– साथ पशु के पेट में उपस्थित जीवाणु को भी पोषण प्रदान करती है।

पशु चोकोलेट का मिश्रणः

खाद्य पदार्थ	मात्रा (%)		
	स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री	हौट बिधि	कोल्ड बिधि
गुड़	42.5	60	50
यूरिया	10	10	10
चोकर	15	20	25
राईस ब्रान	10	–	–
कुल्थी	5	–	–
मिनरल मिक्सचर	10		
नमक	5		5
सोडियम बाई कार्बोनेट	2.5		
सीमेंट			5
बेन्टोंनाइट		1	
कैल्सियम कार्बोनेट		4	
कैल्शियम ऑक्साईड		5	

चौकलेट किस पशु को एवं कैसे खिलायें:

पशु चौकलेट केवल खिलाकर पशु को नहीं रखा जा सकता है, इसके साथ –साथ कम से कम थोडा भूसा जरुर खिलाना चाहिए, नहीं तो यूरिया जहरीला हो जायेगा. चौकलेट का मुख्य उद्येश्य भूसे की उत्पादक क्षमता बढ़ाना है इसलिये इसे भूसे के साथ खिलाना फायदेमंद होता है। चौकलेट में यूरिया मिली रहती है इसलिए इसे केवल जुगाली करने वाली पशु जैसे कि गाय, भैंस, बकरी, एवं भेढ़ को खिलाया जाता है। जुगाली करने वाली पशु में भी 6 महीने से अधिक उम्र के बच्चे को इसे खिलाना चाहिए।

चित्र -पशु चॉकलेट चाटती भैंस

कब खिलायें:

चौकलेट का मुख्य उद्येश्य भूसे की पाचक क्षमता बढ़ाना, साथ ही साथ प्रोटीन एवं मिनरल की कमी को पूरा कर बाँझपन की समस्या दूर करना एवं दूध उत्पादन में बढ़ोतरी करना। इसलिए जब सूखा पड़ता है या पशु के आहार में कमी होती है तब जानवर केवल भूसे पर जीवित रहते हैं जिसके कारण प्रोटीन की कमी होती है एवं रेशा अधिक मिलता है, इस तरह के पशु को खिलाना ज्यादा फायदेमंद रहता है। बीमार पशु ठीक होने के बाद खाना कम खाते हैं उस समय पशु चोकोलेट चटाने से भूख अधिक लगती है एवं पशु खाना शुरु कर देता है।

जब पशु को संतुलित आहार मिल रही हो तब चौकलेट खिलाना जरूरी नही है। पशु यदि चरने जाता है तब शाम को चौकलेट खाने के लिए दें। यदि पशु को दूध दुहते समय यदि चौकलेट चाटने के लिए देते हैं, तब पशु आसानी से दूध दुहने देता है।

चित्र -पशु चॉकलेट चाटती बीमार गाय

चौकलेट खाने से दूसरे आहार में अंतर:

चौकलेट खाने से दूसरे आहार की खुराक और बढ़ जाती है। भूसे की खुराक में 25–30% की वृद्धि होती है. जबकि किसी दाने को खिलाने पर भूसे की खुराक में मात्र 5–10% की वृद्धि होती है.

पशु चौकलेट खिलाने से पशु के उत्पादन क्षमता पर प्रभाव:

- ✓ 14% तक दूध उत्पादन में वृद्धि।
- ✓ पहली वार गर्मी में आने की उम्र 17 महीने से घटकर 15 महीने हो जाता है।
- ✓ पहली वार गाभिन होने की उम्र 19 महोने से घटकर 17 महीने हो जाती है।
- ✓ पहली बार बच्चा देने की उम्र 31 महीने से घटकर 29 महीने हो जाती है।
- ✓ गाभिन होने के लिए औसतन 2 बार गर्भाधान की जरूरत पड़ती है जबकि पहले 2.65 बार की जरूरत होती थी।
- ✓ दो बार बच्चे देने का समय 15.7 महीने से घटकर 13.3 महीने हो जाता है।

गांठदार त्वचा रोग (एलएसडी): पहचान एवं निदान

सोनम भट्ट एवं अनिल कुमार
औषधि विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
गांठदार त्वाचा रोग एक भयानक संक्रामक बीमारी है जो कि केपरीपोक्स विषाणु से होती है, यह बीमारी तीव्र गती से फैलती है और एक महामारी का रूप ले सकती है। पशुओं में इस बीमारी के होने से सीधा असर उनके उत्पादन पर पड़ता हैं जिससे पशुपालकों को भारी आर्थिक नुकसान होता है। इसका प्रकोप भीषण गर्मी और नमी वाले मौसम में ज्यादा देखने को मिलता है, एलएसडी विषाणु आथोपोड वैक्टर जैसे मक्खियों, मच्छरो, किलनी आदि से आसानी से फैलता है। यह विषाणु लार, नाक और आँखो से निकलने वाले स्त्राव, वीर्य तथा रक्त के माध्यम से प्रेषित किया जा सकता है। यह रोग बछड़ों मे संक्रमित दूध पीने से भी हो सकता है। इस बीमारी के मुख्य लक्षण हैं; तेज बुखार, नाक से स्राव का आना, त्वचा पर घाव या गाँठो का बनना, निमोनिया, दूध उत्पादन मे कमी इत्यादि। इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। लक्षण दिखाई देने पर पशुचिकित्सक की सलाह लें। इसके बचाव हेतु टीकाकरण अति आवश्यक है तथा पशुशाला मे जैव सुरक्षा उपाय का प्रयोग कर बीमारी के प्रकोप से पशुओं को बचाया जा सकता है।

सूचक शब्द- गांठदार त्वचा रोग, संक्रामक, टीकाकरण।

परिचयः

लम्पी त्वचा रोग (एलएसडी) एक संक्रामक रोग है जो केपरीपोक्स जीनस पॉक्सविरिडे परिवार से संबंध रखता है। एलएसडी एक गैर पशुजन्य एवं वाहक जनित रोग है। वर्तमान में यह केवल गाय एवं भैंस तक ही सीमित है। आर्थोपोड वैक्टर जैसे कि काटने वाली मक्खियाँ, मच्छर और किलनी इस रोग कों फैलने के लिए जिम्मेदार हैं। इस रोग का प्रकोप गर्म और आर्द्र महीनों के दौरान ज्यादा देखा गया है, चूंकि इन महीनों मे आर्थोपोड वैक्टर की प्रचुरता काफी होती है। सभी उम्र की मवेशियों की नस्लें इसके प्रति संवेदनशील होती हैं। इस रोग की विशेषता पशुओं मे बुखार, लिम्फ नोड में सूजन, त्वचा पर गोलाकार गांठें, जिससे कमजोरी, दूध उत्पादन में कमी एवं बांझपन हो सकता है। एलएसडी रोग हो जाने पर दूध की पैदावार में भारी कमी के कारण अत्यधिक आर्थिक हानि, त्वचा की गुणवत्ता में कमी, दीर्घकालिक दुर्बलता, वजन में कमी, बांझपन, गर्भपात और मृत्यु पायी जाती है ।

बीमारी के कारण

गांठदार त्वचा रोग वायरस (एलएसडीवी) के कारण गांठदार त्वचा रोग होता है, यह पॉक्सविरिडे परिवार से संबंधित है जिसमें कुत्ते को छोड़कर अधिकांश पालतू पशुओं में रोग पैदा करने वाले वायरसों का समूह शामिल है। यह वायरस लंबी अवधि तक परिवेशीय परिस्थितियों में स्थिर रहता है। यह सूखी त्वचा की परतों में 35 दिनों तक, नेक्रोटिक नोडयूल्स में 33 दिनों तक और हवा तथा सूखी खालों में कम से कम 18 दिनों तक जीवित रहते हैं। सूरज की किरणें और वसा डिटर्जेंट वायरस को जल्दी नष्ट कर सकते हैं। लेकिन अंधेरे वातावरण (जैसे पशु बाड़े और चारा भंडार) में वायरस कई महीनों तक रह सकता है । वायरस 55 $^{\circ}$C के तापमान पर 2 घंटे और 65°C के तापमान पर 30 मिनट में निष्क्रिय हो जाता है । यह अत्यधिक क्षारीय या अम्ल पीएच के प्रति संवेदनशील है, लेकिन पीएच 6.6–8.6 पर भी अपने को बनाए रख सकता है। गांठदार त्वचा रोग वायरस (एलएसडीवी) ईथर (20%), क्लोरोफॉर्म, फॉर्मेलिन (1%) के प्रति संवेदनशील है। इसके आलवा फिनाइल (2 %), सोडियम हाइपोक्लोराइट (2–3%), आयोडीन यौगिक (1:33 तनुकरण) और चतुर्धातुक अमोनियम यौगिक (0.5%) के प्रति भी संवेदनशील है।

रोग का संचरण

गांठदार त्वचा रोग (एलएसडी) के संक्रमण का मुख्य स्रोत त्वचा के घावों को माना जाता है क्योंकि घावों या पपड़ियों में वायरस लंबे समय तक बना रहता है। यह वायरस रक्त, नाक और अश्रु स्राव, लार, वीर्य और दूध (दूध पीने वाले बछड़ों में संचारित) के माध्यम से भी स्रवित होता है। एलएसडी आर्थोपोड्स, विशेष रूप से रक्त–चूसने वाले कीड़ों, दूषित भोजन और पानी के माध्यम से फैलता है और रोग होने के बाद के चरणों में यह लार, नाक स्राव और वीर्य के माध्यम से सीधे फैलता है। चूँकि अधिकांश एलएसडी का प्रकोप गर्मियों में होता है जब आर्थोपोड सबसे अधिक सक्रिय होते हैं, इन

आर्थोपोडस का विषाणु के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है। कई अध्ययनों ने विषाणु संचरण में हार्ड टिक्स (किलनी) की संभावित भूमिका को माना है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि मवेशियों पर निर्भर रहने वाले विभिन्न आर्थोपोड एलएसडी विषाणु को संचारित कर सकते हैं। अंतगर्भाशयी मार्ग के माध्यम से भी एलएसडी वायरस संचरण हो सकता है। यह माना गया है कि इस वायरस का संक्रमण संक्रमित गाय से बछड़े में दूध पीने तथा त्वचा में खरोंच के माध्यम से होता है।

चित्रः गांठदार त्वाचा रोग से संक्रमित पशु

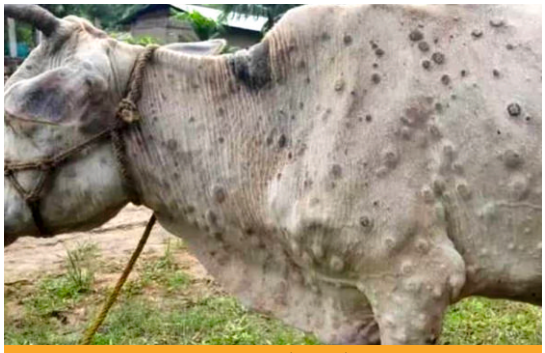

चित्रः गांठदार त्वाचा रोग से संक्रमित पशु

नैदानिक लक्षण

प्राकृतिक अवस्था में गांठदार त्वचा रोग (एलएसडी) की उष्मायन अवधि 2 से 5 सप्ताह के बीच होती है। एलएसडी मुख्यतः तीन रूप में हो सकता हैः तीव्र, सूक्ष्म और जीर्ण रूप। बीमारी की शुरुआत बुखार से होती है और बुखार की शुरुआत के 3 दिनों के भीतर एक या दो गांठें शरीर मे प्रकट होना शुरू होता है। कमजोरी , नेत्र स्राव, दूध उत्पादन मे कमी, बाद में पूरे 'शरीर में गांठदार घाव जो कि लाल एवं दर्द युक्त होते हैं। गंभीर हालत में सौ से ज्यादा गांठें पूरे शरीर की त्वचा पर विकसित हो जाती हैं। गांठें सख्त और आसपास की त्वचा से थोड़ी सी उभरी होती हैं। बाद मे ये गांठें घाव का रूप ले लेते हैं। घावों का ठीक होना बहुत धीमी गति से होता है। समय के साथ नाक की श्लेष्मा झिल्ली, श्वसन नली, मुँह और योनी पर घाव विकसित हो जाते हैं। 2–3 सप्ताह के बाद, त्वचा के घाव सख्त और सड हो जाते हैं, जिससे पशु कों चलने–फिरने मे असुविधा होती है। बाद मे गांठदार त्वचा शरीर से हट जाती है और वहाँ ''सिटफास्ट'' जैसा छेद बन जाता है। इसपर मक्खियाँ तथा जीवाणुओं का आक्रमण होने लगता है जो आगे चलकर सेप्टीसीमिया का कारण बन सकता है। एलएसडी से संक्रमित पशुओं मे निमोनिया भी हो जाता है। कभी–कभी संक्रमित पशुओं के पैरो तथा छाती में सूजन भी पाई जाती है। संक्रमण का तीव्र चरण की अवस्था मे गाभिन पशुओं मे गर्भपात होता है तथा लंबे समय तक पशु हीट मे नहीं आ पाता है और अंत मे पशु बांझपन का शिकार भी हो सकता है। संक्रमित बैलों के गुप्तांगों पर घाव हो जाने पर इनकी प्रजनन क्षमता घट जाती है। द्वितीयक जीवाणु संक्रमण, निमोनिया, थनैला आदि हो जाने के कारण तथा गाठो में मक्खियों के संक्रमण के कारण गहरे छेद हो जाने से पशुओं में सुधार की प्रकिया बहुत धीमी हो जाती हैं।

चित्रः गांठदार त्वाचा रोग से संक्रमित पशु

रोग का निदानः

यह एक विषाणु जनित रोग है इसलिए इसका उपचार सम्भव नहीं है। सहायक चिकित्सा जैसे प्रतिजैविक दवा, ज्वरनाशक, एलर्जी विरोधी दवा, प्रतिकारकशक्ति वर्धक दवा, विटामिन–A एंव E लाभकारी हैं। त्वचा के घाव के लिये एन्टीसेप्टिक दवा लगायें। मुँह के छालों को पोटेशियम परमेगनेट का घोल बनाकर धोएं और फिर बोरोग्लीसरीन लगायें। जानवर के खाने–पीने में सुधार करके, पशुशाला एंव परिसर को साफ – साफ–सुथरा रखकर, अंतः व बाह्य परजीवी का नियंत्रण करके, रोगग्रसित पशुओं से संपर्क बाधित करके इस रोग का रोकथाम कर सकते हैं।

बकरियों में पी.पी.आर. रोग के कारण, पहचान एवं बचाव

रवि शंकर कुमार मंडल एवं सोनम भट्ट
औषधि विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
बकरियों में विषाणु जनित संक्रामक रोगों में पीपीआर एक प्राणघातक बीमारी है। यह पीपीआर विषाणु नजदीकी स्पर्श या संपर्क से बकरियों के झुण्ड में बहुत ही तीव्र गति से फैलता है और महामारी का रूप लेता है। तनाव जैसे परिवहन, गर्भावस्था, परजीवीवाद, पूर्ववर्ती बीमारियों के कारण बकरियाँ पीपीआर रोग के लिए अति संवेदनशील हो जाती है। इस बीमारी से बकरियों में तेज बुखार, मुह में छाले, दस्त, निमोनिया और बकरियों की मौत तक हो जाती है। बकरियों का टीकाकरण ही पीपीआर से बचाव का एक मात्र प्रभावी उपाय है। विषाणु जनित रोग होने के कारण, पीपीआर का कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है। हालांकि प्रतिजैविक द्वारा द्वितीयक जीवाणुयीय संक्रमण को नियंत्रित कर और परजीवियों को नियंत्रित करने वाली दवाओं का उपयोग करके मृत्युदर को कम किया जा सकता है।

सूचक शब्दः बकरी, पीपीआर, महामारी, टीकाकरण।

परिचय :

बकरी पालन गरीब एवं भूमिहीन किसानों के लिए आज कल वरदान साबित हो रही है, क्योंकि इससे कम से कम खर्चे पर एवं अति सरल प्रबंधन से अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। इसलिए इसे गरीबों की गाय भी कहा जाता है। बकरी पालन को लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए बकरियों को स्वस्थ रखना भी बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। कोई भी व्यक्ति जो खुद का बकरी पालन का व्यापार शुरू करने की सोच रहा हो, उसके लिए जरूरी हो जाता है की उसे बकरी की बीमारी की भी जानकारी हो ताकि समय आने पर वह उस स्थिति को संभालकर, कम से कम नुकसान झेल सके। और जो लोग पहले से ही बकरी पालन व्यवसाय से जुडे है, उनके लिए भी जरूरी है कि उन्हें बकरी की बीमारियों एवं उनके समाधान की जानकारी हो।

बकरियों में संक्रामक रोगों में पीपीआर नाम की बीमारी प्राणघातक बीमारी है। पीपीआर इसे बकरियों की महामारी या बकरी प्लेग भी कहा जाता है। इस बीमारी से बकरियों में तेज बुखार, मुह में छाले, दस्त, निमोनिया और बकरियों की मौत तक हो जाती है। यह बीमारी सबसे पहले सन 1942 में पश्चिमी अफ्रीका में देखने को मिली थी। लेकिन आज यह बीमारी पूरे विश्व में फैल चुकी है। भारत में यह बीमारी पहली बार सन 1987 में दक्षिण भारत के तमिलनाडु के विल्लुपुरम जिले के अरासुर गांव से रिर्पोट की गयी थी। तब से पीपीआर को देश के विभिन्न हिस्सों से रिर्पोट किया जा रहा है। अब यह बीमारी पूरे भारत में फैल चुकी है।

यह बीमारी वर्ष में कभी भी बकरियों को संक्रमित कर सकती है, परंतु विशेष रूप से वर्षा ऋतु में इसका असर ज्यादा देखने को मिलता है। यह बीमारी किसी भी उम्र की बकरी को हो सकती है। यह रोग विशेषकर कम उम्र के मेमनों और कुपोषण व परजिवियों एवं पूर्ववर्त्ती बीमारियों सें ग्रसित बकरियों में अति गंभीर एवं प्राणघातक सिद्ध होती है।

पीपीआर रोग का कारक

पीपीआर एक विषाणु जनित संक्रामक रोग है। पेस्टडेस पेटिट्स रूमिनेंट्स विषाणु इस रोग का कारक है। पेस्टडेस पेटिट्स रूमिनेंट्स विषाणु 60° सेल्सियस पर एक घंटा रखने पर भी जीवित रहता है, परंतु अल्कोहल, ईथर एवं साधारण डिट्र्जेंट्स के प्रयोग से इस विषाणु को आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

पीपीआर रोग का प्रसार

यह संक्रामक रोग महामारी के रूप में बकरियों में फैलता है। बीमार बकरी की आँख, नाक व मुँह के स्राव तथा मल में पीपीआर विषाणु पाया जाता है। यह पीपीआर विषाणु नजदीकी स्पर्श या संपर्क से बकरियों के झुण्ड में बहुत ही तीव्र गति से फैलता है और महामारी का रूप लेता है। बीमार बकरी के खाँसने और छींकने से भी तेजी से रोग का प्रसार संभव है। तनाव जैसे परिवहन, गर्भावस्था, परजीवीवाद, पूर्ववर्त्ती बीमारियों के कारण बकरियाँ पीपीआर रोग के लिए अति संवेदनशील हो जाती है।

हाल में विभिन्न आयु की बकरियों का स्थानांतरण अथवा जमाव, नए खरीदे गए बकरियों को बिना जाँचे परखे झुण्ड में शामिल करना, अत्यधिक बकरियों को एक जगह झुण्ड में रखना, बकरी आवास का हवादार का नहीं होना, बकरी आवास में

साफ–सफाई की कमी, मौसम में बदलाव, समय–समय पर कृमिनाशक की दवाई ना पिलाना, टीकाकरण ना कराना इत्यादि पूर्व निपटान कारक के रूप में पीपीआर रोग के प्रसार के लिए महत्वपूर्ण है।

पीपीआर रोग के लक्षण

पीपीआर संक्रमण होने के दो से सात दिन में इसके लक्षण दिखाई देने लगते है। शुरूआती लक्षणों में तेज बुखार (105° से 108° फारेनहाइट) बहुत ही आम है। बीमार बकरियों में उदासीनता, भूख की कमी, छींक तथा आँख व नासिका से तरल स्राव देखा जाता है। दो से तीन दिन के पश्चात मुँह, जीभ तथा मसूढ़े, ओंठ लाल हो जाते है और उसमें छाले पैदा हो जाते है। इसी दौरान बकरियों के मुँह से अत्यधिक बदबू आने लगती है और मुँह में छालों के दर्द व सूजे हुए ओंठों के कारण बकरियाँ चारा खाना छोड़ देती है। इसके बाद आँखो और नासिकाओं का चिपचिपा या पीपदार स्राव के सूखने पर आँखो और नासिकाओं को एक परत बना कर ढक लेती है जिससे बकरियों को आँख खोलने और साँस लेने में तकलीफ होती है (चित्र संख्या 1 व 2)। बुखार आने के तीन से चार दिन के पश्चात बकरियों में अतितीव्र श्लेश्मायुक्त या खूनी दस्त होने लगते है।

चित्र संख्या 1

चित्र संख्या 2

पीपीआर रोग के लक्षण

पीपीआर रोग का निदान एवं बचाव

पीपीआर रोग के लक्षण विभिन्न अन्य बीमारियों जैसे खुर पका मुँह पका, ब्लूटंग, गलघोंटू , ओर्फ रोग जैसे ही होते है। अतः पुश्टी संबंधी निदान के लिए उचित प्रयोगशाला की जाँच जरूरी है। मुख और नाक के स्रावों का उचित प्रयोगशाला की जाँच द्वारा पीपीआर विषाणु को बीमारी के लक्षण आने के पहले से ही पता किया जा सकता है।

बकरियों का टीकाकरण ही पीपीआर से बचाव का एक मात्र प्रभावी उपाय है। विषाणु जनित रोग होने के कारण, पीपीआर का कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है। हालांकि प्रतिजैविक द्वारा द्वितीयक जीवाणुयीय संक्रमण को नियंत्रित कर और परजीवियों को नियंत्रित करने वाली दवाओं का उपयोग करके मृत्युदर को कम किया जा सकता है। सबसे पहले स्वस्थ बकरियों को बीमार बकरियों से अलग रखा जाना चाहिए ताकि रोग को नियंत्रित कर फैलने से बचाया जा सके। इसके बाद बीमार बकरियों का ईलाज शुरू करना चाहिए।

नये लाए गए या खरीदे गए बकरियों को दो से तीन हप्ते तक अलग–थलग (पृथक) रखें। इसके बाद स्वस्थ बकरियों को ही झुण्ड में शामिल करें। बकरी के बाड़े की साफ–सफाई का भी ध्यान रखें।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए पीपीआर महामारी से बकरियों को बचाकर बकरी पालक अपने व्यवसाय को लाभकारी बना सकते है।

निष्कर्षः

पीपीआर पेस्टडेस पेटिट्स रूमिनेंट्स विषाणु जनित संक्रामक रोग है।यह संक्रामक रोग महामारी के रूप में बकरियों में फैलती है। विषाणु जनित रोग होने के कारण, पीपीआर का कोई विशिष्ट उपचार उपलब्ध नहीं है। बकरियों का टीकाकरण ही पीपीआर से बचाव का एक मात्र प्रभावी उपाय है। हालांकि प्रतिजैविक द्वारा द्वितीयक जीवाणुयीय संक्रमण को नियंत्रित कर और परजीवियों को नियंत्रित करने वाली दवाओं का उपयोग करके मृत्युदर को कम किया जा सकता है।

गव्य पशुओं में रेक्टो-वेजाइनल विधि द्वारा कृत्रिम गर्भाधान

डी. सेनगुप्ता एवं सुमित सिंघल
पशु चिकित्सा स्त्री रोग एवं प्रसूति रोग विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना पटना

संक्षेपः
मवेशियों के कृत्रिम गर्भाधान की रेक्टो–वेजाइनल विधि आधुनिक समय में गर्भधारण की सबसे लोकप्रिय विधि बन गई है। जमे हुए वीर्य के स्ट्रॉ के साथ कृत्रिम गर्भाधान न केवल यौन रोगों के संचरण को कम करके गर्भधारण दर में सुधार करता है, बल्कि उच्च उपज वाली नस्लों के साथ स्थानीय गैर–विवरणित गायों को गर्भाधान करके उत्पादकता भी बढ़ाता है।

रेक्टो–वेजाइनल विधि में मलाशय के माध्यम से गर्भाशय को स्पर्श और हेरफेर किया जाता है और गर्भाशय ग्रीवा के माध्यम से कृत्रिम गर्भाधान यंत्र द्वारा वीर्य डाला जाता है। इसमें पाँच चरण शामिल हैं जैसे जानवरों को तैयार करना, जमे हुए वीर्य को लिक्विड नाइट्रोजन टैंक से बाहर निकालना, पिघलाना, एआई यंत्र या गन को लोड करना और गायों का गर्भाधान करना। डेयरी फार्मों के इष्टतम प्रजनन प्रदर्शन के लिए उचित स्वच्छता उपायों का ध्यान रखते हुए सभी पांच चरणों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।

सूचक शब्दः गव्य पशु, जमे हुए वीर्य, पिघलना, लोडिंग एआई गन/यंत्र, कृत्रिम गर्भाधान।

परिचय

स्थानीय कम दूध उत्पादक गैर–वर्णित गायों के बहुत तेजी से आनुवंशिक उन्नति को प्राप्त करने के लिए, भारत ने क्रॉस–ब्रीडिंग कार्यक्रम अपनाया है, जिसमें इन गैर–वर्णित गायों को शुद्ध विदेशी उच्च दूध देने वाली गायों के वीर्य से गर्भाधान कराया जा रहा है और संकर नस्ल की गायों को देशी और विदेशी संकर नस्ल के बैलों के वीर्य से गर्भाधान कराया जा रहा है। इसे प्राप्त करने के लिए, स्थानीय आवारा सांडों द्वारा गायों और भैंसों के प्रजनन को पूरी तरह से रोकने की जरूरत है और प्रजनन की सुदृढ़ता के मानदंडों वाले, परीक्षण किए गए, रोग मुक्त सांडों द्वारा गर्भाधान किया जाना चाहिए। इन सभी प्रक्रियाओं को बुल स्टेशनों द्वारा प्रमाणित किया जाता है और गुणवत्ता वाले वीर्य को जमे हुए वीर्य के स्ट्रॉ के रूप में पैक करके बेचा जाता है । जमे हुए वीर्य को भंडारण टैंक में तरल नाइट्रोजन के तहत रखा जाना चाहिए। केंद्र और राज्य सरकार ने स्थानीय युवाओं को कृत्रिम गर्भाधान की तकनीक में प्रशिक्षित करने के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए हैं। कृत्रिम गर्भाधान के कौशल में निपुण होने के लिए काफी समय और अभ्यास की आवश्यकता होती है, लेकिन इस स्तर पर कुछ आदतों को विकसित करने की आवश्यकता होती है, जिन पर अगर महारत हासिल हो जाए तो निश्चित रूप से डेयरी झुंड की गर्भधारण दर में सुधार होगा।

1. पशु की तैयारी

- गर्भाधान कराने वाली गाय के मलाशय से गोबर को पूरी तरह से हटा देना चाहिए। पूंछ और योनि के आस पास के क्षेत्र को पानी से अच्छी तरह से साफ किया जाना चाहिए और सूखा पोंछना चाहिए।

2. भंडारण टैंक से जमे हुए वीर्य का स्ट्रॉ बाहर निकालना

- स्ट्रॉ रखने वाले कनस्टर को टैंक की गर्दन पर फ्रॉस्ट लाइन से अधिक ऊपर नहीं उठाना चाहिए और वीर्य स्ट्रॉ को चिमटी की मदद से बाहर निकालना चाहिए।
- टैंक की गर्दन पर एक क्षेत्र होता है जो पाले की परत से ढका होता है। यह खतरे का क्षेत्र है जिसके ऊपर तापमान में अचानक वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप वीर्य को काफी नुकसान हो सकता है।

3. विगलन

- टैंक से एक स्ट्रॉ निकालने के बाद उसे $37^{0}C$ पानी वाले थर्मस में 30 सेकंड के लिए डुबाना चाहिए।
- पिघलने के बाद स्ट्रॉ को पानी से निकालकर टिश्यू पेपर या मुलायम तौलिये से पोंछकर सुखा लेना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि एक बार जब स्ट्रॉ का प्रयोगशाला सील कट जाता है, तो बाहरी पानी के साथ वीर्य के किसी भी संपर्क से शुक्राणु की मृत्यु हो सकती है।

4. एआई गन लोड करना

- वीर्य स्ट्रॉ को एआई गन की बैरल में लोड करने से पहले, पिस्टन को स्ट्रॉ की लंबाई के बराबर गन से बाहर निकाला जाना चाहिए। पिघले हुए वीर्य के स्ट्रॉ को फैक्ट्री सील सिरे (कपास–पीवीसी–कपास) पर एआई गन में डाला जाना चाहिए।
- स्ट्रॉ के लैब सील सिरे को स्ट्रॉ के समकोण पर कैंची से काटा जाना चाहिए। सही कोण से कटाई न होन के कारण आवरण में गलत फिट हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वीर्य का प्रवाह वापस हो जाता है।
- स्ट्रॉ के कटे हुए सिरे को म्यान के हरे-पीले इंसर्ट में अच्छी तरह से फिट किया जाना चाहिए और फिर म्यान को बंदूक के ऊपर धीरे से सरकाना चाहिए, ऊपरी सिरे को छोड़कर जहां 'ओ' रिंग म्यान के ऊपर से गुजरनी चाहिए। म्यान का विभाजित ऊपरी सिरा बंदूक के सिर को छूना चाहिए और फिर 'ओ' रिंग को म्यान के विभाजित सिरे पर कस देना चाहिए।
- उनके ऊपर प्लास्टिक कवर के साथ एआई आवरण आदर्श है। ये योनि रोगजनकों के साथ गर्भाशय संदूषण को कम करते हैं।

5. कृत्रिम गर्भाधान

- एक बार जमे हुए वीर्य के स्ट्रॉ को पिघलाने के बाद, इसे 5 मिनट के भीतर कृत्रिम गर्भाधान किया जाना चाहिए।
- गाय को एक ट्रेविस में मजबूती से सुरक्षित किया जाना चाहिए और एक पशु परिचारक को पूंछ को दूर रखना चाहिए।
- अच्छी तरह से चिकनाई युक्त दस्ताने वाला हाथ मलाशय में डालना चाहिए और गर्भाशय ग्रीवा को मजबूती से पकड़ना चाहिए।
- फिर भरी हुई एआई गन को योनी के माध्यम से ऊपर की दिशा में डाला जाना चाहिए ताकि इसे मूत्रमार्ग में प्रवेश करने से रोका जा सके।
- गन वेस्टिबुल से गुजरने के बाद इसे सीधे–होरिजोंतली रूप से पकड़ कर रखना चाहिए और गर्भाशय ग्रीवा को मलाशय के हाथ से आगे की ओर खींचना चाहिए ताकि गन इन सिलवटों में फंसने पर योनि की सिलवटों को सीधा किया जा सके।
- एक बार जब एआई गन गर्भाशय ग्रीवा तक पहुंच जाती है, तो म्यान के ऊपर सुरक्षात्मक पतली प्लास्टिक आवरण को पीछे खींच लिया जाना चाहिए और गर्भाशय ग्रीवा के पीछे के छोर को मलाशय के हाथ से मजबूती से पकड़ लेना चाहिए ताकि अंधी थैली 'फोर्निक्स योनि' खत्म हो जाए और इस प्रकार यह सुनिश्चित हो सके कि एआई गन आंतरिक गर्भाशय ग्रीवा में है।
- इस स्तर पर गर्भाशय ग्रीवा को सभी दिशाओं में घुमाया जाना चाहिए ताकि वह एआई गन के ऊपर सरक सके। गन पर बहुत अधिक बल नहीं लगाया जाना चाहिए क्योंकि इसका उद्देश्य गर्भाशय ग्रीवा को गन के ऊपर सरकाना है न कि गन को गर्भाशय ग्रीवा के माध्यम से धकेलना है।
- यदि एआई गन पर बहुत अधिक बल लगाया जाता है तो ग्रीवा कुंडलाकार रिंग के माध्यम से फिसलने और गर्भाशय की दीवार को जबरदस्ती फाड़ने की पूरी संभावना होती है, जिससे पशु का जीवन खतरे में पड़ सकता है।
- एक बार जब एआई गन गर्भाशय ग्रीवा से गुजर जाती है, तो इसे गर्भाशय के शरीर से आगे नहीं बढ़ना चाहिए और इसे मलाशय से स्पर्श करके जांचा जा सकता है।
- अंत में, एआई गन के पिस्टन को दबाकर वीर्य को गर्भाशय के शरीर पर जमा किया जाना चाहिए।
- एक बार जब गर्भाधान पूरा हो जाता है तो योनी के भगशेफ की मालिश करना अच्छा अभ्यास है क्योंकि यह गर्भधारण दर को बढ़ाता है।

भंडारण टैंक से जमे हुए वीर्य का स्ट्रॉ बाहर निकालना

भरी हुई एआई गन से वीर्य का निर्वहन

पशुधन व्यवसाय : पशुपालकों की उन्नति का एक मजबूत आधार

दीप नारायण सिंह एवं रंजना सिन्हा
पशुधन फार्म काम्पलेक्स, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
हमारा देश प्रारम्भ से ही एक कृषि प्रधान देश है तथा पशुपालन भारतीय कृषि का सबसे महत्वपूर्ण अंग रहा है। देश की लगभग दो तिहाई अधिक आबादी गांवों में निवास करती है जिनके आय का प्रमुख स्रोत कृषि एवं पशुपालन है। कृषि एवं पशुपालन सदैव एक दूसरे के पूरक रहे हैं। पशुपालन से हमें पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य उत्पाद जैसे दूध, ऊन, अंडा, मांस आदि प्राप्त होता है, साथ ही पशुशक्ति, जैविक खाद, घरेलू ईंधन, खाल के साथ–साथ ग्रामीण परिवारों के लिए नकद आय का एक नियमित स्रोत भी प्राप्त होता है। छोटे ग्रामीण परिवारों की आय में पशुधन का योगदान लगाभग 16 प्रतिशत है, जबकि सभी ग्रामीण परिवारों का राष्ट्रीय औसत लगभग 14 प्रतिशत है। पशुधन क्षेत्र लगभग देश की 8.8 प्रतिशत आबादी को रोजगार प्रदान करता है, जिसमें बड़े पैमाने पर भूमिहीन और अकुशल आबादी शामिल है। सूखे, अकाल और अन्य प्राकृतिक आपदाओं में भी किसानों के लिए पशुधन सबसे अच्छे बीमा के समान है। भारत में पशुधन संपदा की वृद्धि अनुमानतः लगभग 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से हो रही है। दूध, ऊन, अंडा, मांस आदि और उनके उप–उत्पाद, जैसे कि संशोधित पशु प्रोटीन, पशु वसा, दूध और अंडे के सह–उत्पाद पशुपालकों के लिए एक अच्छा आय का स्रोत है, तथा पर्यावरण संरक्षण में भी अहम भूमिका निभाते हैं।

सूचक शब्दः उत्पाद, कृमिनाशक औषधि, पशुधन, विपणन, पंचगव्य, टीकाकरण।

परिचय

पशुपालन एक आर्थिक उद्यम है और इसे भारत में लाखों लोगों के लिए "आजीविका का साधन" माना जाता है, विशेष रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में। भारत में, 85 प्रतिशत पशुधन रखने वाले छोटे और सीमांत किसान हैं, जिनके पास 2 हेक्टेयर से कम भूमि है, जो फसल की खेती के लिए 44 प्रतिशत भूमि का संचालन करते हैं और देश के दूध उत्पादन में 69 प्रतिशत से अधिक का योगदान करते हैं। भारत में स्थायी कृषि विकास और खाद्य सुरक्षा का भविष्य छोटे और सीमांत किसानों के प्रदर्शन पर निर्भर करता है।

पशुधन व्यवसाय एक जीवन रेखा के रूप में कार्य करता है क्योंकि यह अकुशल युवाओं की बड़ी आबादी को रोजगार देने वाले दो–तिहाई ग्रामीण समुदाय को आजीविका प्रदान करता है। छोटे ग्रामीण परिवारों की आय में पशुधन का योगदान 16 प्रतिशत है, जबकि सभी ग्रामीण परिवारों का राष्ट्रीय औसत 14 प्रतिशत है। इतना ही नहीं, पशुधन क्षेत्र 8.8 प्रतिशत आबादी को रोजगार प्रदान करता है जिसमें बड़े पैमाने पर भूमिहीन और अकुशल आबादी शामिल है। पशुधन क्षेत्र में, डेयरी उप–क्षेत्र ने हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

पशुधन से प्राप्त होने वाले प्रमुख उत्पाद एवं उपोत्पाद

पशु उत्पादों के साथ–साथ उनके उप–उत्पादों का उचित उपयोग किया जाये तो देश की अर्थव्यवस्था और पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के साथ–साथ किसानों की आय वृद्धि पर भी सीधा प्रभाव डालती है। फसल अवशेषों का समुचित उपयोग, पूरे वर्ष चरागाहों का उचित प्रबन्धन या हरे चारा की उपलब्धता के साथ फसल अनुक्रमण और एकीकृत कृषि प्रणालियों को अपनाने से पशु का स्वास्थ्य, उत्पादन एवं प्रजनन पर बहुत ही सकारात्मक प्रभाव पडता है, जिससे पशुपालक को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। गैर–पारंपरिक आहार का उपयोग भी पशुपालन की लागत को कम करने एवं पर्यावरण सुरक्षा में लाभदायी होता है। हमारे पशुपालकों द्वारा उन्नत वैज्ञानिक प्रबन्धन को अपनाने से उन्हें मूल्यवान पशु उत्पादों, सह–उत्पादों एवं पशु उत्पादों के मूल्य संवर्धन से अधिकतम लाभ मिलेगा। विगत कुछ वर्षों में विभिन्न दुग्ध उत्पादों के उचित और विवेकपूर्ण उपयोग के लिए लोगों के बीच व्यापक प्रसार और रुचि बढ़ाने के लिए अनेकानेक अनुसंधान कार्य किये गये हैं, इसके लिए गोबर और मूत्र के साथ डेयरी, मांस और त्वचा उद्योग के मूल्य संवर्धन और पशु उपोत्पादों के समुचित उपयोग, किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के साथ–साथ स्वस्थ पर्यावरणीय मुद्दों की

बेहतरी एवं मृदा तथा मानव स्वास्थ्य के लिए पंचगव्य, जीवामृत और गौ–मूत्र अर्क आदि मूल्यवान औषधीय उत्पाद तैयार किया जा रहा है। परन्तु हमारे अधिकांश पशुपालक इन नवीनतम जानकारियों एवं इनसे होने वाले लाभ से लगभग अनजान है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी आय में अपेक्षित वृद्धि नही हो पा रही है। यदि पशुपालकों के द्वारा नवीनतम वैज्ञानिक तकनीकि ज्ञान को अपनाया जाये तो निःसन्देह हमारे पशुपालकों की आय में वृद्धि होगी, जो कि निम्नवत हैः–

अ. पशुधन प्रबन्धन

पशुधन के उत्तम विकास, स्वास्थ्य, उत्पादन एवं प्रजनन हेतु हमें उनका जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार उनके खान–पान एवं आवास का उचित प्रबन्ध करना चाहिये। पशुधन प्रबन्धन के प्रमुख रूप से चार प्रमुख स्तम्भ होते हैं;

1. **आहार**– पशुधन को उनकी आवश्यकता अनुसार संतुलित आहार प्रदान करना एवं पूरे वर्ष हरे चारे की उपलब्धता बनाये रखना, जीवन की विभिन्न अवस्थओं के अनुरूप हरा चारा, सूख चारा, अनाज एवं खनिज मिश्रण प्रदान करना।
2. **प्रजनन**– नस्ल की शुद्धता बनाये रखना एवं अयोग्य पशुओं का बधियाकरण कर अवांछनीय प्रजनन को कम करना आदि।
3. **प्रबन्धन**– पशुओं को समुचित आवास की उपलब्धता, साफ एवं स्वच्छ वातावरण प्रदान करना, स्वास्थ्य प्रबन्धन जैसे सम्यक टीकाकरण, कृमिनाशक औषधियों को खिलाना एवं वाह्य एवं अन्तः परजीवीनाशक औषधियों को खिलाना।
4. **छंटनी**– अनुपयोगी, अपेक्षित विकास न होने, उत्पादन कम होने, प्रजनन एवं स्वास्थ्य आदि में विकार होने की स्थिति में समय–समय पर छँटनी करना आदि महत्वपूर्ण है, जिससे हमे अपने पशुओं से लागत के अनुरूप अधिक लाभ प्राप्त होगा।

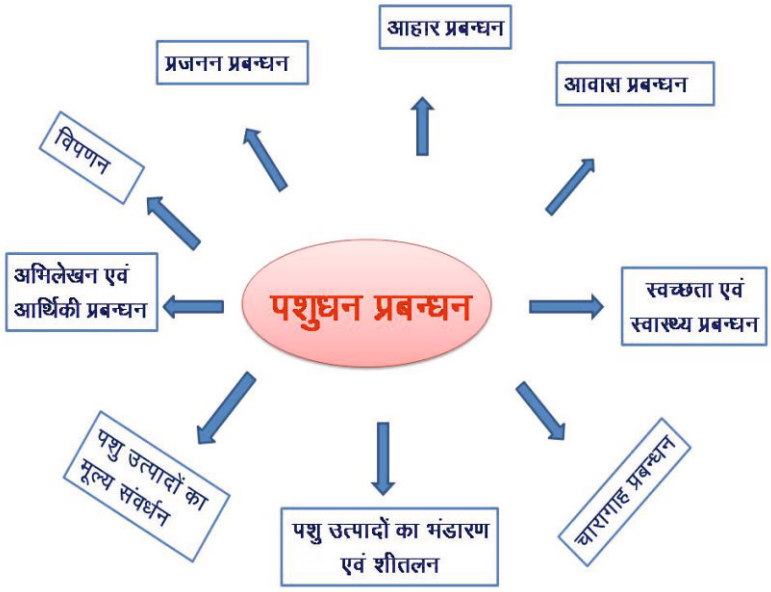

निष्कर्षः

पशुपालन के बारे में नवीनतम ज्ञान के साथ ही पशुपालन की वैज्ञानिक पद्धतियों जैसे स्वास्थ्य प्रबन्धन, आहार प्रबन्धन, आवास प्रबन्धन, प्रजनन प्रबन्धन, पशु जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में आवश्यक प्रबन्धन, गर्भित पशु प्रबन्धन, दुहान प्रबन्धन, पूरे वर्ष हरे चारे की उपलब्धता एवं संरक्षण, फसल अवशेषों का समुचित उपयोग, पूरे वर्ष चरागाहों का उचित प्रबन्धन या हरे चारा की उपलब्धता के साथ फसल अनुक्रमण, फसल चक्र और एकीकृत कृषि प्रणालियों चारागाह प्रबन्धन, गैर–पारम्परिक आहार अर्थात नान कन्वेन्शनल फीड, टीकाकरण, दूध एवं मीट उत्पादों के वैल्यू एडिसन/संवर्द्धन, उपोत्पादों का समुचित उपयोग आदि के बारे में आवश्यक जानकारियाँ ग्रहण कर एवं अपनाकर हमारे पशुपालक भाई एवं बहनें कम लागत लगाकर अधिक से अधिक आय अर्जित कर अपने एवं देश के सर्वागीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

मवेशियों में किलनी की समस्याएं और समाधान

मृत्युंजय कुमार और पल्लव शेखर
औषधि विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेप

जानवरों में किलनियों की 106 अलग–अलग प्रजातियाँ हैं, लारवल अवस्थाएं दुधारू पशुओं के शरीर पर रहती हैं और मादा किलनी पशुओं के शरीर से जानवरों के अस्तबलों के फर्श, दरारों और उनकी दीवारों में जाकर अंडे देती हैं। डेयरी पशुओं में किलनी संक्रमण के प्रभाव और इसके लक्षण पशुओं के स्वास्थ्य को दो तरह से प्रभावित करते हैं; प्रत्यक्ष प्रभाव और अप्रत्यक्ष प्रभाव। प्रत्यक्ष प्रभाव में में किलनी जानवरों का खून चूसते हैं जिससे एनीमिया हो जाता है और उसके परिणामस्वरूप पशु धीरे–धीरे कमजोर हो जाते हैं। अप्रत्यक्ष प्रभाव में एक तरफ किलनी जानवरों का खून चूसते हैं और उत्पादक क्षमता को कम करते हैं वहीं दूसरी तरफ वे अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के जीवाणु, विषाणु और आदिजन्तु परजीवियों को संचारित करते हैं जो जानवरों में विभिन्न संक्रामक रोग जैसे स्पाइरोकेटोसिस, किलनी बुखार एन्सेफलाइटिस, थीलेरियोसिस बेबियोसिस और एनाप्लास्मोसिस जैसे रोग पैदा करते हैं। किलनी हो जाने के बाद बाजार मे उपलब्ध विभिन्न औषधियों जैसे आईबरमेक्टिन, डुरामेक्टिन, फ्लूमेथ्रीन, डेल्टामेथ्रीन के उपयोग से इसका नियंत्रण किया जा सकता है और पशुओं में फैलने वाले विभिन्न रोगों को रोका जा सकता है।

सूचक शब्दः किलनी, रक्तअल्पता, पशु परजीवी नियंत्रण।

परिचय

किलनी आमतौर पर पशुओं में पाए जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण बाहरी परजीवी हैं। किलनी को कुटकी, चिचड़ी, अठगोरवा, टिक्स आदि नामों से जाना जाता है। पशु पर किलनी के दो प्रकार के प्रभाव होते है, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव। प्रत्यक्ष प्रभाव में यह पशुओं की रक्त चूस कर खून की कमी और अप्रत्यक्ष प्रभाव में विभिन्न प्रकार के रोगों के प्रसार में वैक्टर के रूप में काम करता है। उत्पादन और प्रदर्शन पर अप्रत्यक्ष नुकसान त्वचा की जलन, एनीमिया, शरीर के वजन में कमी, दूध उत्पादन में कमी और रोग संचरण जैसे हैं। इसके द्वारा फैलाऐ गये रोगों से पशु मर भी जाते है। जिससे गंभीर आर्थिक नुकसान होता है।

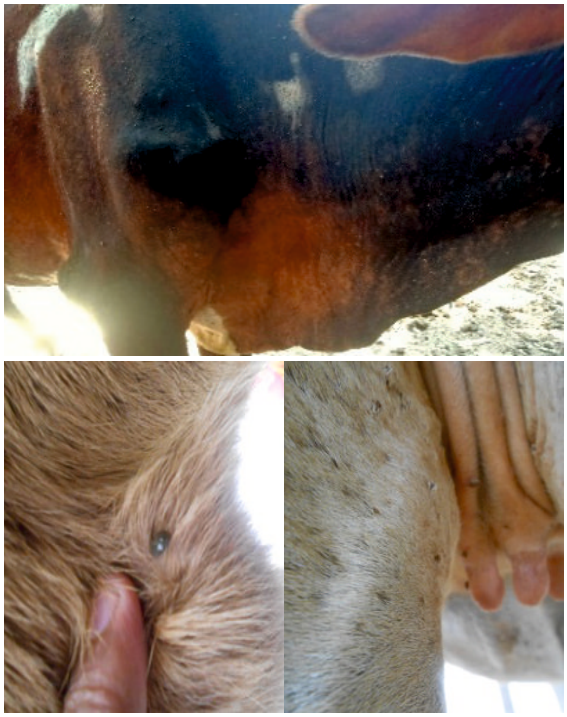

चित्र 1: पशु के शरीर पर किलनी

जानवरों में किलनियों की 106 अलग–अलग प्रजातियाँ हैं, जिनके वैज्ञानिक नाम एम्बलीओम्मा, बूफिलस, हायलोमा, राइपिसेफालस और डर्मासेंटर आदि हैं। सभी किलनी का जीवन चक्र ऐसा होता है कि उनकी वयस्क और लारवल अवस्थाएं दुधारू पशुओं के शरीर पर रहती हैं और मादा किलनी पशुओं के शरीर से जानवरों के अस्तबलों के फर्श, दरारों और उनकी दीवारों में जाकर अंडे देती हैं। एक मादा किलनी एक समय में 500 से 5000 अंडे देती है। फूटे हुए अंडों से निकलने वाले लार्वा उसी या दूसरे जानवर के शरीर से चिपक जाते हैं। नर किलनी हमेशा जानवरों के शरीर से चिपके रहते हैं। यद्यपि किलनी पूरे वर्ष जानवरों के शरीर से जुड़ी रहती है लेकिन इनका प्रकोप हर साल सितंबर से नवंबर और फरवरी से मार्च महीने में अधिक होता है।

मवेशियों में किलनी संक्रमण का नियंत्रण

आम तौर पर मवेशियों में किलनी संक्रमण के नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग एकेरिसाइड्

के रूप में किया जाता है। एकेरिसाइडस जानवरों के शरीर पर वयस्क किलनी को मार देता हैं लेकिन किलनीयों के अंडे इनके द्वारा पूरी तरह से नष्ट नहीं होते हैं। इसके अलावा किलनी फर्श, दरारों, पेड़–पोधौ और दीवारों की दरारों में छिपे रहते हैं। ये यौगिक अत्यधिक विषैले होते हैं और ऐसे रसायनों का उपयोग पूरी सावधानी और विशेष सुरक्षा के साथ करना चाहिऐ। इनके प्रयोग से पशुओं में कार्सिनोजेनेसिस भी आ सकता है। इन रसायनों के अधिक उपयोग से ऐसे एकेरिसाइड के प्रति दवा–प्रतिरोध का विकास भी हो जाता है। इस प्रकार ऐसे रसायन एक समयावधि के बाद किलनी के विरुद्ध पूरी तरह से अप्रभावी हो जाते हैं। प्रमुख एकेरिसाइड में पाइरेथ्रोइड (साइपरमेथ्रिन और डेल्टामेथ्रिन) और ऑर्गेनोफॉस्फोरस, हेप्टाफेन, कोमाफोस, फेनवेलरेट आते हैं। डेल्टामेथ्रिन बाजार में ब्यूटॉक्स नाम से उपलब्ध है। इसका उपयोग स्प्रे या डिप के रूप में किया जाता है। मिश्रण के लिए प्रति लीटर पानी में 2–3 मिलीलीटर डेल्टामेथ्रिन (1.25%) का उपयोग करना करना चाहिए और फिर इसे जानवरों को स्नान कराने के लिए उपयोग करना चाहिए। जानवरों के परिसर और अस्तबल की दीवारों और फर्श पर स्प्रे के लिए इस उत्पाद के 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में मिलाएं। ये सभी रसायन जानवरों के लिए अत्यधिक विषैले होते हैं। जानवरों को रासायनिक एकेरिसाइडस को चाटने से रोकने के लिए जानवरों के मुंह को उचित रूप से बंद करना चाहिए। उपचार के बाद (जानवरों द्वारा चाटने से बचाने के लिए रासायनिक डुबकी या छिड़काव से पहले जानवरों को पीने को पानी देना चाहिए। अमित्राज लिक्विड 2 मिली प्रति लीटर मिश्रण के बाद शरीर पर लगाने के लिए उपलब्ध है। इसी प्रकार अमित्राज और डेल्टामेथ्रिन भी मिश्रित रूप में उपलब्ध है। फ्लुमेथ्रिन (1%) का उपयोग विशेष रूप से जानवर की पीठ की त्वचा पर दोनो कंधों के बीच से पूंछ के आधार तक दिया जाता है।

इंजेक्शन और टैबलेट के रूप किलनी को मारने के लिए आइवरमेक्टिन और डोरेमेक्टिन उपलब्ध हैं। इस उद्देश्य के लिए पशु के शरीर के वजन के 50 किलोग्राम पर 1 मिलीलीटर की दर से इन उत्पादों का इंजेक्शन चमड़ी के नीचे दिया जाता है। रासायनिक एकेरिसाइडस का सामान्य रूप से मनुष्य, जानवरों और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए इसका उपयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। गौशालाओं और अस्तबलों में उपयोग करते समय इन्हें घर पर बच्चों के पहुंच से बाहर रखना चाहिए। किलनी के नियंत्रण के लिए कुछ एथनो–मेडिकल, एथनो–पशु चिकित्सा या हर्बल औषधियाँ उपचार के लिय उपलब्ध है जो प्राचीन पारंपरिक पशु निदान प्राकृतिक चिकित्सा से संबंधित हैं। मवेशियों में किलनी संक्रमण को हटाने के लिये हर्बल औषधियाँ प्राकृतिक जड़ी–बूटियों जैसे नीम, तम्बाकू, सीताफल, देवदार, नीलगिरी, तेज पत्ता, पुदीना और लहसुन इत्यादि से निष्कर्षण विधि द्वारा उत्पादित की जाती हैं। इन हर्बल औषधीयो से इलाज किए गए जानवरों को न केवल किलनी से छुटकारा मिलता है और वे स्वस्थ हो जाते हैं, बल्कि कोई विषाक्तता या दुष्प्रभाव भी नहीं दिखाते हैं जैसा कि ''रासायनिक एकेरिसाइडस के मामले में होता है। इसके अलावा उपचारित पशुओं के संपर्क में आने वाले बच्चे और पुरुष भी दुष्प्रभाव से सुरक्षित रहते हैं।

होम्योपैथिक दवा पाइरेथ्रम बाजार में उपलब्ध शेवंती क्रिजेनथेनम जड़ी बूटी के फूल और पत्ती के अर्क से निर्मित होती है जो एकेरिसाइड के रूप में बहुत प्रभावी है।

किलनी से पशुओं की सुरक्षाः

- पशु शेडों में गंदगी जमा न होने दें। किलनी अपने अंडे भीड़–भाड़ वाले पशु शेडों में अंधेरे और गंदे इलाकों में देती हैं। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि पशुशालाओं को सबसे ज्यादा साफ–सुथरा रखा जाए। पशुओं के शेड को अच्छी तरह हवादार और तेज रोशनी से युक्त रखना चाहिए।
- नए आए जानवरों को कम से कम 2 सप्ताह तक किलनी संक्रमण की निगरानी के लिये अलग–थलग (क्वारंटाइन) में रखाना चाहिए।
- अस्तबल के जानवरों को तालाबों या जल–जमाव वाले स्थानों पर बैठने नहीं देना चाहिए।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष के तौर पर किलनी पशुओं पर पायी जानें वाली व्यापक समस्या है। किलनी सिर्फ पशुओं का खून ही नहीं पीते बल्कि अनेक जानलेवा बीमारीयों को पशुओं मे फैलाते हैं, जिससे पशुओं की मौत तक हो जाती है। किलनी का पशुओं में रोकथाम साफ–सफाई और संतुलित आहार के द्वारा किया जा सकता है। किलनी हो जाने के बाद बाजार मे उपलब्द विभिन्न औषिधयो जैसेः आईबरमेक्टिन, डुरामेक्टिन, फ्लूमेथ्रीन, डेल्टामेथ्रीन के उपयोग से इसका नियंत्रण किया जा सकता है और पशुओं में फैलने वाले विभिन्न रोगों को रोका जा सकता है।

कुक्कुट प्रसंस्करण (पोल्ट्री प्रोसेसिंग) से प्राप्त कुक्कुट प्रोत्पाद व उनकी उपयोगिता

साधना ओझा एवं मुकेश गंगवार

[1]पशुधन उत्पाद एंड प्रौद्योगिकी विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेप

मुर्गीपालन मांस और अंडे का महत्वपूर्ण स्रोत है। और यह प्रति वर्ष 8–10 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। मुर्गीपालन से मांस का उत्पादन 4.995 मिलियन टन है, जो कुल मांस उत्पादन का लगभग 51.14 प्रतिशत योगदान देता है। पोल्ट्री मांस उत्पादन की वृद्धि पिछले वर्ष की तुलना में 4.52 प्रतिशत बढ़ी है। पोल्ट्री पक्षियों के पालन और वध के दौरान भारी मात्रा में पोल्ट्री उप–उत्पाद उत्पन्न होते हैं। उप–उत्पादों के कुशल उपयोग का सीधा प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था और पर्यावरण प्रदूषण पर पड़ता है। उप–उत्पादों के गैर–उपयोग या कम उपयोग से न केवल संभावित राजस्व की हानि होती है, बल्कि इन उत्पादों के निपटान की लागत भी बढ़ती है। पोल्ट्री उप–उत्पादों का उचित तरीके से उपयोग न करने से बड़ी सौंदर्य संबंधी और विनाशकारी स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो सकती हैं। प्रदूषण और खतरे के पहलुओं के अलावा, कई मामलों में पोल्ट्री प्रसंस्करण अपशिष्टों में कच्चे माल को रीसाइक्लिंग करने या उच्च मूल्य के उपयोगी उत्पादों में परिवर्तित करने की क्षमता होती है। पोल्ट्री प्रसंस्करण और अंडा उत्पादन उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट उत्पादों को कुशलतापूर्वक निपटाया जाना चाहिए क्योंकि इन उद्योगों का विकास काफी हद तक अपशिष्ट प्रबंधन पर निर्भर करता है।

सूचक शब्द – पोल्ट्री उपोत्पाद, फेदर मील, ड्राई रेंडरिंग, वेट रेडरिंग।

परिचय

पिछले कुछ सालों से भारत में कुक्कुट उत्पादो की माँग में वृद्धि हो रही है। इसकी मुख्य वजह यह है। कि कुक्कुट उत्पादो मूल्यों में प्रतिस्पर्धा तथा इसके उत्पादो में पाये जाने वाले पोषक तत्व तथा समाज के द्वारा बिना किसी धार्मिक समस्या के इसका सेवन करना।

हमारे देश में अधिक मात्रा मे पोल्ट्री का वध (स्लॉटर) किया जाता है। जिससे हमें विभिन्न प्रकार के कुक्कुट माँस (मीट) से निर्मित उत्पाद तथा इसके अलावा बहुत अधिक मात्रा में कुक्कुट अपशिष्ट तथा कुक्कुट उप–उत्पाद (पोल्ट्री बाइप्रोडक्टस) प्राप्त होते हैं। कुक्कुट पालन से प्राप्त कुक्कुट प्रोत्पाद की उपयोगिता बहुत है। इन प्रोत्पादो का उपयोग ऊर्जा के रूप में, जानवरों के खाद्यपदार्थो के रूप में, उर्वरक तथा कैल्शियम फॉस्फोरस सप्लीमेंट के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। कुक्कुट पालन के दौरान प्राप्त अपशिश्टों का सही तरीके से उपयोग न केवल बातावरण को प्रदूषित होने से वही बचाता है अपितु इन अपशिष्टों को से मूल्यवान पदार्थ या उत्पाद बना कर देश की अर्थव्यवस्था को सुधारा भी जा सकता है। कुक्कुट प्रसंस्करण (पोल्ट्री प्रोसेसिंग) के दौरान बहुत से कुक्कुट प्रोत्पाद प्राप्त होते है। जिनका विवरण निम्नलिखित है –

कुक्कुट प्रोत्पाद (पोल्ट्री बाइ प्रोडक्टस)	कुक्कुट प्रोत्पाद का प्रतिशत
फेदर (पंख)	6 से 7
रक्त (ब्लड)	3.5
सिर (हेड)	3.0
पैर (फीट)	3.9
आंत, फेफड़े, यकृत, पैनक्रियास, स्पलीन	8 से 9

विभिन्न कुक्कुट प्रोत्पादो जैसे फेदर, ब्लड तथा ऑफल का अनुपात 4:1:6 होता है। उर्पयुक्त प्रोत्पादो के अलावा और भी प्रोत्पाद जैसे अनुपयोगी मुर्गियाँ डिबोनिग प्रक्रिया के दौरान प्राप्त हड्डियाँ, अविकसित अण्डे इत्यादि प्राप्त होते है जो कि अखाद्य प्रोत्पादों के रूप में प्रयोग किये जा सकते हैं।

विभिन्न कुक्कुट प्रोत्पादों का उपयोग

कुक्कुट पंख या पोल्ट्री फेदर का प्रयोग :

इनका उपयोग बेडिंग मटेरियल, आभूशणों, वस्त्रों, खेल उपकरणों, साजसज्जा के पदार्थो तथा उर्वरक के रूप में किया जाता है। कुक्कुट पंख का फेदर मील बनाने में प्रयोग किया जाता है, जिसमे 70 से 80 प्रतिशत प्रोटीन, 10 प्रतिशत नमी तथा 4 प्रतिशत, फाइवर होता है। जिसका प्रयोग जानवरों के खाद्य पदार्थो में किया जाता है। फेदर मील का प्रयोग मोनोगैस्ट्रिक जानवरों के खाद्यो में 0.5 से 1 प्रतिशत तक किया जाता है। तथा रूमिनेन्टस (जुगाली करने वाले जानवर) तथा पोल्ट्री राशन में इसका इसका प्रयोग सीमित एमीनों एसिड प्रोफाइल की वजह से सिर्फ 4 से 5 प्रतिशत तक किया जाता है।

कुक्कुट लिटर तथा खाद्य (मैन्योर) :

मुर्गी पालन में मुख्यतः दो प्रकार के खाद्य का उत्पादन होता है। डिहाइड्रेह पोल्ट्री एक्सक्रीटा (केज सिस्टम से प्राप्त खाद्य) तथा रिसाइकिल्ड पोल्ट्री बेडिंग मटेरियल (लिटर सिस्टम से प्राप्त)। पोल्ट्री खाद्य नाइड्रोजन, फाइबर तथा ऊर्जा का खास स्त्रोत है। कुक्कुट खाद्य का प्रयोग प्राकृतिक ईधन के रूप में किया जा सकता है। 9 प्रतिशत पोल्ट्री लिटर तथा पानी का प्रयोग विद्युत उत्पादन में किया जा सकता है। पोल्ट्री लिटर का व्रायलर तथा लेयर राशन में 20–25 प्रतिशत तक प्रयोग किया जा सकता है।

हैचरी प्रोत्पाद :

कुक्कुट हैचरी प्रोत्पाद में प्रायः अण्डे का छिलका, अविकसित अण्डे, बिना हैचिंग के अण्डे तथा मृतभ्रूण, मृतचूजे सम्मिलित हैं। उर्ययुक्त सभी प्रोत्पादों को हैचरी बाइप्रोडक्ट मील के रूप में परिवर्तिन करके उपयोग में लाया जा सकता है। यह उच्चगुणवत्ता वाले प्रोटीन का स्त्रोत है। हैचरी बाइप्रोडक्ट मील का प्रयोग लेयर राशन में 3 से 5 प्रतिशत तक कर सकते है।

स्किन, गिजार्ड तथा हृदय का उपयोग :

इनका उपयोग इमल्सन आधारित उत्पादों जैसे नगेट, पेटीज में किया जाता है। इसके प्रयोग से उत्पाद स्वादिष्ट हो जाता है, तथा इसके पोषक तत्व में वृद्धि होती है। गिजार्ड में प्रायः 20 प्रतिशत प्रोटीन होता है।

ऑफल मील

ऑफल मील मुर्गी के सिर, पैर तथा अखाद्य अंगो का प्रयोग करके बनाया जाता है। इसका प्रयोग पालतू जानवरों तथा खेल में काम करने वाले जानवरों के राशन में 5–7 प्रतिशत तक दिया जा सकता है।

पोल्ट्री प्रोत्पादों (कुक्कुट प्रोत्पादों) की प्रोसेसिंगः

रेन्डरिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग करके कुक्कुट प्रोत्पादों को मूल्यवान उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है। रेडरिंग प्रक्रिया से खाद्य तथा अखाद्य वसा, मीट मील, फैदर मील, टेक्निकल फैट इत्यादि पदार्थो का निर्माण किया जा सकता है।

रेंडरिंग प्रक्रिया दो प्रकार की होती है–

ड्राई रेंडरिंग तथा वेट रेडरिंग

ड्राई रेंडरिंगः इसमें ड्राई रेन्डरर का प्रयोग किया जाता है। यह एक होरीजोन्टल (क्षैतिज) स्टीम जैकेट के रूप में होता है। इसमें भाप प्रत्यक्ष रूप से कच्चे पदार्थ के संपर्क में नहीं आती। ड्राईरेंडरिंग में कच्चे पदार्थ को 3 से 4 घ़न्टे तक 75 पी.एस.आई दबाब से पकने देते है। इस प्रक्रिया में पोषक तत्वों का कोई नुकसान नहीं होता। इस प्रक्रिया में वसा निकालने के बाद बचे हुये पदार्थ को क्रैकलिंग कहते है। ड्राईरेंडरिंग प्रक्रिया में वेट रेडरिंग की अपेक्षा 20 प्रतिशत तक अधिक वसा प्राप्त होती है।

वेट रेडरिंग

यह वटिर्कल उपकरण होता है। इसमें भाप कच्चे पदार्थ से प्रत्यक्ष रूप से संपर्क में रहती है। इस प्रक्रिया में कच्चे पदार्थ को 4 से 8 घ़न्टे तक 40 प्रतिशत दबाब से पकाया जाता है। वसा निकालने के बाद बचे हुये पदार्थ को टैंकेज कहते है। वेट रेंडरिग में वसा की रिकवरी ड्राईरेडरिंग से अच्छी होती है।

निष्कर्ष

पोल्ट्री उपोत्पादों में बड़ी मात्रा में पोषक तत्व होते हैं। यह प्रोटीन का एक वैकल्पिक स्रोत है। विश्व स्तर पर पशु प्रोटीन की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए पोल्ट्री मांस उद्योग के उप–उत्पादों का प्रभावी उपयोग आवश्यक है। पोल्ट्री मांस उद्योग के अपशिष्टों के आगे उपयोग से पोल्ट्री और जलीय कृषि उद्योगों को कम लागत वाले फीड की आपूर्ति में वृद्धि होगी। पोल्ट्री मांस के सह–उत्पादों को पालतू जानवरों के भोजन में बदलने के लिए नवीनतम् तकनीकों को अपनाने से पालतू जानवरों के भोजन उद्योग को भी काफी लाभ होगा। पोल्ट्री उप–उत्पादों के उपयोग से राजस्व सृजन होगा और साथ ही साथ पर्यावरण प्रदूषण भी सुधार होगा।

गायों और भैंसों में प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया के लक्षण, उपचार और रोकथाम

नीलम कुशवाहा[1] एवं आनंद मोहन[2]
[1]पशु औषधि विभाग, पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज, बि.प.वि.विवि. पटना
[2] पशुचिकित्सा नैदानिक परिसर, पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया दुधारू गायों और भैसों में होने वाली एक चयापचय बीमारी है। यह रोग उच्च उत्पादक क्षमता वाली गायों और भैसों में उनके दुग्ध काल के प्रारंभिक चरण के दौरान फॉस्फोरस की कमी के कारण होता है। रक्त द्रव्य में फॉस्फोरस स्तर में कमी के कारण लाल रक्त कोशिकाओं की फॉस्फोलिपिड परतें भंग होने लगती हैं, जिसके परिणामस्वरूप हीमोग्लोबिनुरिया होता है और उपचार न किए जाने पर रोग की गंभीरता के कारण पशु की मृत्यु हो सकती है। पानी का कम सेवन, कब्ज, दुध उत्पादन में कमी, लाल भूरे रंग का मूत्र और पीली श्लेष्मा झिल्ली इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। इस रोग के निदान के लिए रोगग्रसित पशु में दिखाई देने वाले लक्षण, मूत्र विश्लेषण और रक्त परीक्षण के निष्कर्ष उपयोगी हैं। इस रोग के उपचार के लिए फॉस्फोरस के इंजेक्शन के साथ सहायक चिकित्सा दी जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए पशुओं को प्रारंभिक दुग्धकाल में फॉस्फोरस की उचित मात्रा देनी आवश्यक है।

सूचक शब्दः फॉस्फोरस, रक्ताल्पता, प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया, गाय, भैंस।

परिचय :

उच्च उत्पादक क्षमता वाली दुधारू गाय और भैंस में प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया एक आम समस्या है। इसे फॉस्फोरस की कमी से होने वाली हीमोग्लोबिनुरिया या पोषण संबंधी हीमोग्लोबिनुरिया से भी जाना जाता है। क्षेत्रीय भाषा में इस रोग को लहू मूतना या रक्त मूतना के नाम से जाना जाता है। यह रोग भारत में दुधारू मवेशियों के लिए एक गंभीर समस्या है, जिससे हर साल काफी मात्रा में पशु प्रभावित होते हैं। समान्यतः यह रोग उन गायों और भैंसो में होता है, जिनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता अधिक होती है। दूध न देने वाले मवेशियों में यह रोग नहीं होता है। यह एक महत्वपूर्ण चयापचय संबंधी विकार है, जो प्रायः प्रसव के 30 दिनों की अवधि के भीतर होता है। यह रोग पशुओं में उनके तीसरे से छठे दुग्धकाल के दौरान सर्वाधिक होता है। तीव्र अंतःशिरा रक्त अपघटन, हीमोग्लोबिनुरिया, रक्ताल्पता, कमजोरी और दूध उत्पादन में कमी इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। संकरित गायों की तुलना में भैंसों में हीमोग्लोबिनुरिया की संभावना उनके तीसरे दुग्ध काल के दौरान अधिक होती है। गायों में यह रोग प्रायः प्रसव के 2–4 सप्ताह के बाद होता है, जबकि भैंसो में यह ज्यादातर अग्रिम गर्भावस्था और दुग्धकाल के प्रारंभिक चरण में होता है। यह बीमारी सर्दियों के महीनों में अधिक होती है। इस बीमारी से आर्थिक नुकसान भी होता है, जिसमें उपचार की लागत, दूध उत्पादन में कमी और उच्च मृत्यु दर शामिल हैं।

रोग के कारक :

प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया, फॉस्फोरस की कमी के कारण होती है। यह विकार आहार में फास्फोरस की कमी के साथ–साथ हाल ही में प्रसव हुए गायों और भैंसो में दूध में फॉस्फोरस की अधिक मात्रा की निकासी या अग्रिम गर्भावस्था के दौरान भ्रूण के विकास के लिए फॉस्फोरस की बढ़ती आवश्यकता के कारण होता है।

यह रोग उन पशुओं में अधिक होता है, जो विशेष रूप से सूखे चारे जैसे भूसे जिनमें प्राकृतिक रूप फॉस्फोरस की कमी होती है, खाते हैं। यह रोग उस क्षेत्र विशेष में हो सकता है, जहाँ की मिट्टी में फॉस्फोरस की कमी होती है। सूखा–ग्रस्त क्षेत्र में रहने वाले पशुओं में इस रोग के होने की संभावना अधिक होती है।

गाय और भैंस में प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया से संबंधित संभावित कारकों में उनकी उम्र, गर्भावस्था का चरण, दुग्ध काल की संख्या, प्रसवोत्तर अवधि, आहार में फॉस्फोरस की कमी, क्रुसीफेरी वंश के पौधों जैसे गोभी, शलजम आदि और बरसीम, चुकंदर के चारे का अंतर्ग्रहण, रक्त द्रव्य में तांबे और सेलेनियम तत्व की कमी, मिट्टी और चारे में मोलिब्डेनम तत्व की अधिकता हैं। मोलिब्डेनम तत्व की अधिकता भी फॉस्फोरस के अवशोषण में हस्तक्षेप करती है और मूत्र के माध्यम से फॉस्फोरस के निष्कासन को बढ़ाती है। इस कारण पशु के शरीर में फॉस्फोरस की कमी हो जाती है।

बढ़ा हुआ कैल्सियम और फॉस्फोरस का अनुपात, विटामिन–D की कमी और जठरांत्रिय विकारों के कारण आंत से फॉस्फोरस का अवशोषण कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप फॉस्फोरस की कमी की स्थिति उत्पन्न होती है। कम फॉस्फोरस वाले आहार के साथ, उच्च कैल्सियम आहार भी जठरांत्रिय पथ से फॉस्फोरस के अवशोषण को कम कर देते हैं।

बारिश के कारण मिट्टी का निक्षालन या फसल द्वारा लगातार मिट्टी को हटाने से मिट्टी में फॉस्फोरस का स्तर कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उस पर उगने वाले पौधों में फॉस्फोरस की कमी हो जाती है। इन पौधों को पशु को चारे में खिलाने से उनमें हीमोग्लोबिनुरिया होता है। इसके अलावा, अत्यधिक ठंडे मौसम में रहने और ठंडा पानी पीने से भी गायों और भैंसों में हीमोग्लोबिनुरिया होता है।

रोग के लक्षणों की पहचान कैसे करे ?

इस रोग से प्रभावित गायों और भैंसों में पहला उल्लेखनीय नैदानिक लक्षण, मूत्र का लाल भूरे रंग (कॉफी के रंग) का हो जाना है, जिसे हीमोग्लोबिनुरिया कहते हैं। प्रारंभ में पशु सामान्य रूप से चारा और पानी लेते रहते हैं, लेकिन 1–2 दिनों के बाद, धीरे–धीरे उनकी भूख कम होने लगती है, पशु सुस्त दिखने लगते हैं। प्रभावित गायों और भैंसों का गोबर प्रायः सूखा और सख्त हो जाता है। श्लेष्मा झिल्ली पीली हो जाती है व पीलिया भी हो जाता है। हृदय की धड़कन में वृद्धि हो जाती है। पशुओं में निर्जलीकरण की अवस्था अधिक हो जाती है। रोग के अंतिम चरण के दौरान सांस लेने में तकलीफ के साथ– साथ श्वसन दर में वृद्धि हो जाती है। शरीर की स्थिति में धीरे–धीरे कमी आने लगती है। रोग की अवधि प्रायः 5–8 दिनों का होता है। रोग के तीव्र चरण में गंभीरता के कारण पशु की मृत्यु हो सकती है।

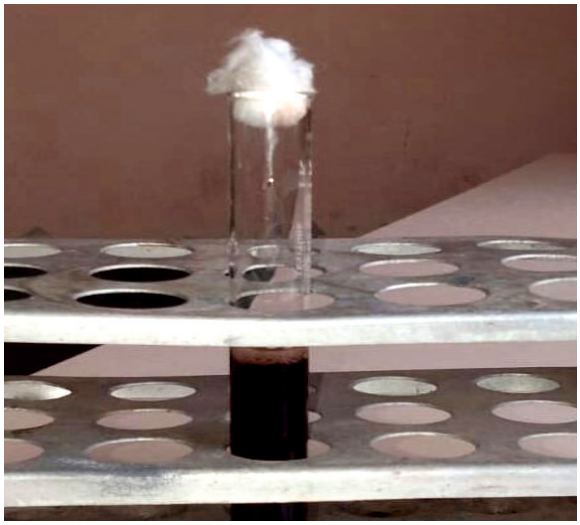

प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया से प्रभावित भैंस में लाल भूरे रंग के मूत्र का उत्सर्जन

रोग का निदान कैसे करे ?

प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया का निदान पशु की गर्भावस्था या प्रसव के विवरण, नैदानिक लक्षण, रक्त द्रव्य में फॉस्फोरस के स्तर में कमी और रक्त परीक्षण के आधार पर किया जाता है–

- अग्रिम गर्भावस्था में या हाल ही में प्रसव हुए उच्च उत्पादक क्षमता वाली गाय और भैंस को सूखा चारा खिलाने का विवरण।
- विशिष्ट नैदानिक लक्षण जैसे लाल भूरे रंग का मूत्र, पीली श्लेष्मा झिल्ली, भैंसों में सामान्य तापमान के बावजूद मल त्याग के दौरान जोर लगाना।
- रोग के गंभीर मामलों में हीमोग्लोबिन का स्तर 3–4 ग्रम प्रति डेसीलिटर तक कम हो जाता है।
- रक्त द्रव्य में फॉस्फोरस का सामान्य स्तर 4–7 मिलीग्रम प्रति डेसीलिटर के मुकाबले 0.5–3 मिलीग्रम प्रति डेसीलिटर तक कम हो जाता है।
- फॉस्फोरस थेरेपी/उपचार के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया रोग के निदान की पुष्टि करता है ।

उपचार :

जैसे ही इस रोग के नैदानिक लक्षण दिखाई दें, चिकित्सा शुरू कर देना चाहिए। प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया के उपचार का मूल सिद्धान्त रोग ग्रसित गायों और भैसों में फॉस्फोरस की कमी को ठीक करना है। बफर्ड अकार्बनिक फॉस्फोरस जैसे कि नोविजैक को 50 मि.ली., अंतः शिरा मार्ग द्वारा 3–4 दिन के लिए देना बहुत प्रभावी है। इसके अलावा सोडियम एसिड फॉस्फेट का इंजेक्शन देना फायदेमंद है। गंभीर रूप से प्रभावित पशु, जिनमें PCV स्तर 15 प्रतिशत से कम हो जाता है, उनमें सम्पूर्ण रक्त चढाना ही एकमात्र प्रभावी उपचार है। रक्त की मात्रा रोग की गंभीरता और पशु के शारीरिक भार पर निर्भर करता है। यद्यपि 400 किलोग्रम की गाय को 4 लीटर रक्त चढ़ाना उचित है।

सहायक चिकित्सा– आरोग्य प्राप्ति को बढाने और रोग की पुनरावृत्ति रोकने के लिए सहायक चिकित्सा आवश्यक है–

- हेमोस्टेटिकः जैसे इंजेक्शन एडक्रेम 5–10 मिलीलीटर 1–3 दिन के लिए अंतः पेशीय मार्ग द्वारा दें।
- विटामिन बी काम्प्लेक्स इंजेक्शन 5–10 मिलीलीटर 5–7 दिन के लिए अंतः पेशीय मार्ग द्वारा दें।
- 20 प्रतिशत डेक्सट्रोज, 500–1000 मिलीलीटर प्रति दिन अंतः शिरा मार्ग द्वारा 3–5 दिन के लिए दें।
- पशु को रक्त वर्धक टानिक पिलायें या आयरन के इंजेक्शन दें । साथ ही, पशु को 7–10 दिन के लिए गुड. खिलायें।
- एसकार्बिक एसिड या विटामिन–E का इंजेक्शन देना लाभकारी है।

रोग की रोकथाम और नियंत्रण कैसे करे ?

- प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया की रोकथाम के लिए, गायों और भैंसों में अग्रिम गर्भावस्था और प्रारंभिक दुग्ध काल के दौरान, फॉस्फोरस का पर्याप्त सेवन सुनिश्ति करना चाहिए। साथ ही, उन्हें ठंड से भी बचाना चाहिए। इन पशुओं को क्रुसीफेरी वंश के पौधों जैसे गोभी, शलजम आदि और बरसीम, चुकंदर का चारा नहीं देना चाहिए।
- जब अधिक संख्या में दुधारू गायों या भैसों फॉस्फोरस की कमी से पीडित हों तो फॉस्फोरस, उनके पीने के पानी में मिलाना सुविधाजनक होता है।
- पशुओं को अच्छी गुणवत्ता वाला हरा चारा और पर्याप्त मात्रा में सान्द्र पदार्थ दें।
- पशुओं को गर्भावस्था के दौरान खनिज से भरपूर संतुलित आहार खिलाना चाहिए।
- पशु को महीने में एक बार विटामिन डी का इंजेक्शन देना लाश्कारी है।
- उन पशुओं में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए, जिन्हें पिछले दुग्ध काल के दौरान यह बीमारी हो चुकी है।

प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया से प्रभावित पशु

निष्कर्ष

उच्च उत्पादक क्षमता वाली गायों और भैसों में प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया फॉस्फोरस की कमी के कारण होता है। गाय और भैस उनके तीसरे से छठे दुग्धकाल में इस रोग से सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। इस रोग की पहचान रोग के विशिष्ट नैदानिक लक्षण, रक्त द्रव्य में फॉस्फोरस के स्तर में कमी और रक्त परीक्षण के आधार पर किया जाता है। रोग का उपचार फॉस्फोरस की कमी को ठीक करके और अन्य संभावित कारकों को दूर करके किया जाता है। इसके रोकथाम के लिए, गायों और भैंसों में अग्रिम गर्भावस्था और प्रारंभिक दुग्ध काल के दौरान, फॉस्फोरस और अन्य खनिज और विटामिन पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। इसके साथ ही, प्रसवोत्तर हीमोग्लोबिनुरिया के संबंध में किसानों को अच्छे प्रबंधन की जानकारी और जागरूकता, पशुओं को इस रोग से बचाने में सहायक है।

गाय व भैंस में प्रजनन सामान्य रखने हेतु पशु पालकों के लिए दिशा निर्देश

अंकेश कुमार[1] एवं अनिल कुमार [2]
[1]क्लीनिकल कॉम्प्लेक्स, बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना
[2]औषधि विभाग, बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
प्रत्येक वर्ष पशु से एक बच्चा लेना पशुपालकों के लिए आमदनी का अच्छा स्रोत है, लेकिन दुर्भाग्य से हमारे देश में ऐसा अच्छे प्रबन्धन वाले पशुओं में भी सम्भव नहीं हो पा रहा है। जिसका मुख्य कारण पशुओं का गर्मी में आने पर उनका पता न लगना, सही समय पर गर्भधान का न होना, सही किस्म की वीर्य की अनुपलब्धता, पशु की बच्चेदानी में संक्रमण रोग का होना आदि है। इससे पशुपालक की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। प्रजनन सही ढंग से होने पर पशुओं में उत्पादन की बढोतरी होती है। इसलिए गर्भ परीक्षण सही समय पर करा लेना चाहिए।

सूचक शब्दः– गाय–भैंस, प्रजनन, जनेन्द्रिय, गर्भ परिक्षण।

पशुचिकित्सक द्वारा पशु बांझपन रोग एवं गर्भ जांच

प्रायः देखा गया है कि कृत्रिम एवं प्राकृतिक गर्भधान के बाद गाय अथवा भैंस गर्म नहीं होती है तो उनके गाभिन होने का अनुमान लगा दिया जाता है। परन्तु बहुत से पशु गाभिन होने के बाद प्रजनन सम्बन्धी रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं जिसके कारण न तो ये फिर से गर्म होते हैं और न ही बच्चे पैदा करने के काबिल रहते हैं। पशुपालक ऐसे पशु की जांच कराये बिना उनके ब्याने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में आप अनुमान लगा सकते हैं कि पशुपालक को कितना नुकसान उठाना पड़ता है। पशु गर्भाधान के पश्चात पुनः गर्मी में आ जाते हैं या हल्का सा स्राव देने लगते है ऐसी परिस्थिति में पशुपालक को अपने गाभिन पशुओं की जांच गर्भाधान के 2 माह के बाद पशु चिकित्सक से करा लेनी चाहिए। आज के वैज्ञानिक युग में भी कुछ पशुपालक ऐसे हैं जो पशुओं की गर्भाधान की जांच कराये बिना पशुओं की कुछ लक्षण देखकर ही उनको गर्भवती मान लेते हैं। जैसे कि पशु के सिर के बाल उड़ जाना, पशु का थन बड़ा दिखाई देना, पशु की नाभि पर सूजन इत्यादि, जबकि बहुत सी परिस्थितियों मे आवश्यक नहीं है कि आपका पशु गर्भ धारण किये हुए है। पशुपालक को चाहिए इन सब बातों पर विश्वास न करके पशु के गर्भ धारण की जांच पशु चिकित्सक से करायें।

बहुत बार ऐसा भी देखने में आया है कि पशु क्रय विक्रय करने वाले व्यापारी पशु को खाली बताकर सस्ते दामों में खरीद लेते हैं व कई बार पशु के गाभिन की तिथि गलत बता देते हैं क्योंकि बहुत से पशु बताये गये समयानुसार नहीं ब्याते हैं तो पता चलता है कि पशुपालक ठग लिए गये हैं या उनके साथ धोखा हुआ है। पशुपालको को ऐसे व्यापारियों से सावधान रहना चाहिए और पशु क्रय एवं विक्रय करते समय अपने निकटतम पशुचिकित्सक से गर्भ धारण की जांच करा लेनी चाहिए।

प्रत्येक पशुपालक के लिए आवश्यक है कि वह पशु के गर्भ होने के समय पशु द्वारा उत्पन्न लक्षणों की जानकारी रखें जिनमें मुख्य है; पशु का बार–बार पेशाब करना, चारा एवं दाना कम खाना, थनों में दूध रोक लेना या दुहने के समय से पूर्व ही दूध से थन भर लेना। परन्तु कई बार से लक्षण इतने कमजोर होते हैं कि पशुपालक यह जान ही नहीं पाते कि पशु गर्म है अथवा नहीं। इसके कारण वे अपने पशु को समय पर गाभिन नहीं करा पाते हैं या प्रतीक्षा करते रहते हैं कि वह बोली नहीं है, जबकि अधिकतर संकर नस्ल की गायें गर्मी के समय बार–बार बोलने के लक्षण प्रदर्शित नहीं करती। ऐसे पशु गर्म होने के समय पेशाब के रास्ते चिपचिपा स्राव अवश्य डालते हैं। इसमें यह भी उचित रहेगा की ऐसे पशुओं की समय–समय पर पशुचिकित्सक द्वारा जांच कराते रहें जिससे पशुओं की नियमित प्रजनन चक्र का पता लगता रहे तथा लम्बे समय तक प्रतीक्षा से बचा जा सके।

गायों में गर्मी का समय औसतन 18 घंटे रहता है। गर्मी समाप्त होने के लगभग 12–14 घंटे बाद अण्डाशय से डिम्ब निकालता है, जो कि शुक्राणु से मिलकर भ्रूण बनता है। कई बार अण्डाशय से डिम्ब अपने नियमित समय पर नहीं निकल पाता है जिसकी वजह से पशु गाभिन नहीं हो पाते हैं तथा अगले 20–25 दिन पश्चात फिर से गर्म होते हैं जिसे हम पुनरागत प्रजनक या पुनः प्रजनन कहते हैं। पुनरागत प्रजनक पशुओं की जांच कराकर सही स्थिति मालूम कर लें।

यहां पर हम पशुपालकों को यह भी बताना चाहेंगे कि पशु के गर्मी में आने पर उसे कब गर्भाधान करायें। साधारणतया गायों अथवा भैंसो के गर्भ धारण गर्मी समाप्त होने के 8 घंटे पूर्व से लेकर गर्मी समाप्त होने तक करवा लें। मोटे तौर पर हम यह भी कह सकते हैं कि यदि शाम के समय गर्मी में आया है तो अगले दिन सुबह के समय गर्भाधान करना चाहिये। पशु के गर्भाधान की जांच गर्भाधान के 2 माह पश्चात करा लेना चाहिए। इससे फायदा यह होगा कि यदि पशु गाभिन रह गया है तो उस पशु की देखभाल उसी के अनुरूप की जायेगी और यदि गर्भ नहीं ठहरा है तो गर्भ न ठहरने के कारणों की जांच एवं उचित चिकित्सा की भी व्यवस्था की जा सकती है। उपराक्त जानकारी तथा उचित कार्यक्रम अपनाने से पशु में दो ब्यांत के बीच के समय को काफी कम कर सकते हैं। पशु पालकों के हित में होता है कि वे अपने पशुओं को ब्याने के लगभग 6–8 सप्ताह के बीच गाभिन करा लें। संकर नस्ल की गायें तो ब्याने के 45 दिन बाद गर्मी में आकर गर्भधारण योग्य हो जाती हैं।

प्रजनन रोगों के प्रति लापरवाही बरतने से मादा पशुओं में बांझपन जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इन रोगों में प्रजनन अंगों पर व उनकी प्रजनन प्रक्रिया एवं क्षमता पर विपरीत असर पड़ता है ऐसे पशुओं में अधिकतर असामान्य स्राव होता है जिसकी उचित जांच के बाद उपचार कराना चाहिए। कुछ पशुओं में गर्भधारण के कुछ समय बाद प्रजनन सम्बधी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे बच्चेदानी में मवाद भर जाना, बच्चे का सूख जाना व प्रसिसटेंन्ट कॉरपस लूटियम। ऐसे पशु गर्मी में नहीं आ पाते एवं पशु समय पर नहीं ब्याते हैं तो जांच कराने से इन रोगों का पता चलता है। कई बार पशु के अण्डाशय में सिस्ट बन जाते हैं इस कारण से भी पशु सदैव गर्मी में रहता है। ऐसे पशुओं को छटनी कर देना ही लाभदायक होता है जिससे बीमारी उनके आने वाले संतानों में न हो पाये। पशुओं में विटामिन–ए, खनिज लवण जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, कोबाल्ट आदि तथा हार्मोन की कमी के कारण अपरिपक्व अण्डाशय जैसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है। सही जांच के पश्चात ही उचित उपचार सम्भव है।

प्रजनन सम्बन्धी रोग कैसा भी क्यों न हो उसके कुप्रभाव से पशुपालक की आर्थिक स्थिति गड़बड़ा जाती है। इसलिए आवश्यक है कि ऐसे रोगों की जांच करने के पश्चात समय पर चिकित्सा करा ली जाये।

पशुपालक को चाहिए कि अपने पशुओं का गर्भ परीक्षण पशुचिकित्सक द्वारा ही कराए। जांच कराने से पूर्व पशु के प्रजनन की सही जानकारी पशुचिकित्सक को देनी चाहिए जैसे गर्भाधान कब कराया था, प्राकृतिक अथवा कृत्रिम विधि से गर्भाधान कराया या पिछला बच्चा आसानी से पैदा हुआ था या कठिनाई से, पशु ने जेर अपने आप डाली या निकलवानी पड़ी थी इत्यादि। ऐसी जानकारियां पशु चिकित्सक को गर्भ परीक्षण में सहायक सिद्ध होती हैं। पशु में गर्भ परीक्षण गर्भधारण के 2 माह बाद करा लेनी चाहिए लेकिन कुशल पशुचिकित्सक गर्भधारण के 35–40 दिन बाद भी गर्भ परीक्षण कर सकता है कि पशु गाभिन है अथवा नहीं।

पशुचिकित्सक गाय व भैंस में गर्भ परीक्षण उसकी गुदा में हाथ डालकर करता है इस विधि से पशुचिकित्सक गर्भाशय ग्रीवा, गर्भाशय का परीक्षण करके पता लगाता है कि पशु गाभिन है अथवा नहीं। इससे पशु के ब्याने के समय का भी अनुमान लगाया जा सकता है व ब्याने के समय बच्चा किस स्थिति मे है आदि की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

पशु के परीक्षण से पता चलता है कि पशु की प्रजनन की स्थिति संतोशजनक है अथवा नहीं। ऐसे पशु जिनकी प्रजनन क्षमता संतोशजनक नहीं है तथा उत्पादन क्षमता निम्न स्तर की है और दो ब्यांत के बीच का अन्तराल अधिक है उनको खासतौर से कुशल पशुचिकित्सक से सलाह करके उचित इलाज कराना चाहिए। यदि इलाज सम्भव नहीं है तो पशु की छँटनी कर देनी चाहिए।

पशुधन रोग निदान में शव परीक्षण की भूमिका

कौशल कुमार एवं अजय मुटकुले
पशु व्याधि विज्ञान विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
आजकल, व्यावसायिक पशुपालन में न्यूनतम लागत के साथ अधिकतम उत्पादन पर जोर दिया जाता है, ताकि पशुपालकों की आय दोगुनी की जा सके। ऐसे में रोग निदान एवं समुचित उपचार के लिए शव परिक्षण की अहम भूमिका होती है। पोस्टमार्टम जांच से पता चलता है कि जानवर को कौन सी बीमारी से ग्रसित था, बीमारी कितनी गंभीर थी, बीमारी कैसे फैली, बीमारी में कौन–कौन से अंग प्रभावित हुए इत्यादि। वैज्ञानिक विधि से शव परिक्षण करने के उपरांत सटीक रोग निदान किया जा सकता है जो कि उचित उपचार के लिए आवश्यक कदम है।

सूचक शब्दः शव परीक्षण, उपचार, संक्रामक एवं शव निस्तारंण।

परिचय :

शव परिक्षण की भूमिका रोग निदान में अहम एवं एक वस्तुपरक विषय है। पशुधन शव परीक्षण पशुओं में संक्रामक रोगों को रोकने और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए शव परीक्षण आवश्यक है। जानवरों में रोग निदान मुख्य रूप से बीमारी के लक्षण, रोग नमूनों की प्रयोगशाला जांच या मृत जानवरों के शव–परीक्षण द्वारा किया जाता है। रोग निदान पशुओं में रोग का पता लगाने और उसके आधार पर अनुमान लगाने की प्रक्रिया है। सटीक निदान रोग के उचित उपचार के लिए आवश्यक कदम है। आजकल, व्यावसायिक पशुपालन में न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन पर जोर दिया जाता है। व्यावसायिक पशुपालन के कारण उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ, जलवायु में अचानक परिवर्तन के कारण पशुओं पर तनाव पैदा होता है और विभिन्न शारीरिक शिकायतों और महामारी संबंधी बीमारियों की घटनाओं में वृद्धि होती है।

पशुओं में कई बीमारियाँ एक जैसे लक्षण दिखाती हैं, कुछ में तो, कोई लक्षण भी नहीं दिखते। ऐसी स्थिति में बीमारी का निदान करना बहुत मुश्किल हो जाता है। विशिष्ट उपचार के बिना बीमार जानवर मर जाते हैं। यदि रोग संक्रामक है, तो अन्य जानवरों को संक्रमित करने की भी अधिक संभावना होती है। इसकी रोकथाम के लिए मृत या बीमार पशुओं की उचित जांच कर रोग का निदान करना बहुत जरूरी है। एक बार निदान हो जाने पर, विशिष्ट उपचार के साथ–साथ रोग निवारक उपायों से बीमारी को रोका जा सकता है। मृत्यु के संभावित कारण को निर्धारित करने के लिए एक मृत जानवर का वैज्ञानिक विच्छेदन, विशिष्ट चोटों अथवा जख्मों का अवलोकन निदान के लिए अतिरिक्त परीक्षणों के साथ और एक प्रयोगशाला में नमूनों की जांच, यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि किस कारण से जानवर की मृत्यु हुई थी।

शव परीक्षण के लाभ :

- यह पूर्वानुमान का एक अभिन्न अंग है। परीक्षा में, जानवर का विच्छेदन किया जा सकता है और पूरी तरह से जांच की जा सकती है।
- पोस्टमॉर्टम परीक्षण में हम नग्न आंखों से अंग के आकार, रंग आदि को बड़ा हुआ देख सकते हैं।
- कई बीमारियाँ जीवित पशुओं में समान लक्षण दिखाती हैं, इसलिए जिस बीमारी से जानवर की मृत्यु हुई है, उसका पता लगाने के लिए संदिग्ध बीमारी से संबंधित बीमारी के नमूनों की जांच करके पोस्टमार्टम किया जा सकता है।
- पोस्टमार्टम जांच से पता चलता है कि जानवर को कौन सी बीमारी थी, बीमारी कितनी गंभीर थी, बीमारी कैसे फैली, बीमारी में कौन से अंग प्रभावित हुए आदि।
- शव परीक्षण हमें न केवल मृत जानवर के बारे में बल्कि झुंड के अन्य जानवरों के बारे में भी बहुत मूल्यवान जानकारी मिलती है।
- जानवर की मृत्यु कैसे, कब और क्यों हुई यह नोट किया जाता है। मृत्यु का कारण जानने से झुंड के अन्य जानवरों को उचित दवा देना आसान हो जाता है।
- किसी जानवर की मौत का कारण निर्धारित करने के लिए फोरेंसिक मामलों में पोस्टमार्टम जांच का बहुत महत्व है।

- पोस्टमॉर्टम परीक्षा अनुसंधान और विकास के विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक ज्ञान को आगे बढ़ाने में मदद करता है।

पोस्टमार्टम के आवश्यक पहलू:

- पशु के मरते ही उसका पोस्टमार्टम कराना चाहिए। वास्तविक पोस्टमार्टम जांच से पहले जानवर के मालिक या ऐसा करने के लिए उपयुक्त प्राधिकारी से मांग पत्र की आवश्यकता होती है।
- पोस्टमॉर्टम जांच जल्द से जल्द और दिन के उजाले में की जानी चाहिए। पोस्टमार्टम जांच कम रोशनी में नहीं करनी चाहिए क्योंकि शव में बदलाव स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देते हैं।
- मृत जानवर के मालिक को मृत्यु से पहले जानवर के लक्षणों और शव परीक्षण करने वाले पशुचिकित्सक को दिए गए उपचार के बारे में विस्तृत जानकारी देनी चाहिए।
- बीमित पशुओं के मामले में संबंधित बीमा कंपनी के सक्षम प्राधिकारी से एक अनुरोध पत्र प्राप्त होना चाहिए।

चित्र: बछड़े का शव परिक्षण।

पशु शव परीक्षण की आवश्यकता :

- मृत्यु का कारण जानने के लिए किया जाता है।
- किसी भी न्यायिक कानूनी मामले जैसे दुर्घटना, जहर आदि के लिए किया जाता है।
- बीमित पशु का मृत्यु प्रमाण पत्र जारी करना।
- वैज्ञानिक अनुसंधान को मान्य करना।
- जब कोई महामारी या संक्रामक रोग होता है।
- किसी भी संदिग्ध या कानूनी (Veterolegal) मामले में। या फिर जब जानवर बिजली गिरने, डूबने, करंट लगने आदि से मर जाते हैं।

शव–निस्तारंण की विधि :

शव परिक्षण के उपरांत मृत जानवरों के शव को समुचित ढग से निस्तारंण किया जाना चाहिए ताकि कोई भी संक्रमण की सम्भावना को कमतर किया जा सके। मृत जानवरों के शव का निपटान इसलिए भी जरूरी है कि कोई महामारी न फैले। समुचित शव निस्तारण की निम्नलिखित विधि हैं।

- यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मृत जानवर को मृत्यु के स्थान से निपटान के स्थान तक ले जाते समय शव से रक्त, लार या अन्य स्राव जमीन पर न गिरे। इसके लिए रुई के फाहे को कीटाणुनाशक घोल में भिगोकर पशु के प्राकृतिक छिद्रों में भिगोना चाहिए।
- मृत जानवर को दफनाने के लिए जानवर की लंबाई और चौड़ाई से लगभग 6 से 8 फीट गहरा और 2 फीट चौड़ा गड्ढा खोदें। पशुओं को गड्ढे में दबाते समय पिछला भाग नीचे की ओर तथा पैर का भाग ऊपर की ओर रखना चाहिए। मरने के बाद पैर की कड़ी हड्डियाँ तोड़ देनी चाहिए। बजरी में चूना पत्थर या सेंधा नमक मिलाना चाहिए।
- जानवर को दफनाने के बाद शव को 3–4 फीट मिट्टी से ढक देना चाहिए ताकि कुत्ते या जंगली जानवर मिट्टी को खरोंच न सकें। दफनाने के बाद उस स्थान पर कंटीले तारों की बाड़ लगा देनी चाहिए।
- मृत जानवरों को दफनाने का स्थान बस्ती से दूर होना चाहिए और नदी नाले या झील के पास नहीं होना चाहिए।
- जानवरों को जलाना एक महँगा तरीका है। जानवरों को जलाने के लिए लकड़ी, गीली घास सूखी घास आदि का उपयोग किया जा सकता है। आधुनिक समय में जानवरों को जलाने के लिए बिजली की मशालें या पेट्रोल/रॉकेट मशालों का भी उपयोग किया जाता है।
- मृत पशु के निपटान के बाद, पशु के परिवहन के लिए उपयोग किए जाने वाले वाहन और अन्य वस्तुओं को कीटाणुरहित किया जाना चाहिए।
- गौशाला क्षेत्र को कीटाणुनाशक घोल से धोना चाहिए। कीटाणुशोधन के लिए 10 प्रतिशत कास्टिक सोडा, 4 से 5 प्रतिशत फॉर्मेलिन घोल या क्लोरीन घोल का उपयोग करना चाहिए।

बैकयार्ड कुक्कुट पालन

चन्द्रहास
अधिष्ठाता, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः

बैकयार्ड कुक्कुट पालन की पद्धति प्राचीनकाल से प्रचलित है जो मुख्यतः घर के लिए आवश्यक अण्डों और मांस की उपलब्धता के साथ–साथ छोटी सम्पूरक नियमित आय का स्रोत है। यह परिवार के सदस्यों को कुपोषण से बचाने का सशक्त स्रोत है। इसे बहुत कम लागत पर किया जा सकता है। इसमें मुर्गी पालन की पद्धति सदियों पुरानी है लेकिन आज के बदलते परिवेश में इसमें सुधार लाकर इसे अधिक लाभप्रद बनाने की आवश्यकता है।

सूचक शब्द : देशी मुर्गी, बैकयार्ड, अण्डे और मांस।

परिचयः

आधुनिक मुर्गी पालन के जनक भारतवर्ष में घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन का कार्य प्राचीन काल से होता रहा है। लगभग 3000 वर्ष पुराने ग्रंथों में भारतीय उप–महाद्वीप में मुर्गे की लड़ाई का जिक्र इसका प्रमाण देता है। आज से दो दशक पूर्व तक अण्डे और मांस का उत्पादन परम्परागत घर के पिछवाड़े देशी मुर्गी पद्धति से होता था। इस पद्धति में प्रायः 5–20 मुर्गियों का छोटा सा समूह एक परिवार के द्वारा पाला जाता है, जो घर के आंगन, पिछवाड़े तथा गली–कूँचों में अन्न के गिरे दाने, झाड़–फूसों के गिरे बीज, कीड़े–मकोड़े, घास की कोमल पत्तियाँ तथा घर की जूठन इत्यादि खाकर अपना पेट भरता है। केवल प्रतिकूल वातावरण में निम्नकोटि का थोड़ा सा अनाज खिलाने की जरूरत पड़ती है। इसके रात्रि विश्राम तथा शिकारियों से बचाव के लिए घर के टूटे भाग काम में आते हैं या बांस की पुरानी टोकरी इत्यादि काम में लाए जाते हैं। इस प्रकार उनके रख–रखाव और खाने–पीने का कोई खर्च नहीं पड़ता है। अण्डे और मांस बिना किसी लागत के उपलब्ध होते हैं। घर में अण्डे और मांस का उत्पादन होने से घर के सदस्य उसे खाकर कुपोषण से बचते हैं तथा बचे हुए अण्डों और मांस से छोटी परन्तु नियमित आमदनी होती है।

आज देशी मुर्गी के पालन में वैज्ञानिक उपलब्धियों का समावेश कर इसे इतना लाभप्रद बना दिया गया है जिसके कारण यह जाति और गरीबी की सीमाओं को तोड़ चुका है। आज घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन में सभी जाति और सभी आय वर्ग के लोगों के लिए अलग–अलग आयाम उपलब्ध हैं जिसके कारण इसे निम्न, मध्यम और उच्च आय वर्ग के लोग अपनी हैसियत और जरूरत के अनुसार अपना सकते हैं। बैकयार्ड कुक्कुट उत्पादन की सफलता के लिए निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

उचित जनन–द्रव्य का प्रयोग

इस पद्धति में प्रायः अवर्णित देशी मुर्गियों का उपयोग होता है जिनकी उत्पादन क्षमता तथा बढ़ोत्तरी दर उन्नत नस्ल की विदेशी मुर्गियों की अपेक्षा काफी कम है। देशी मुर्गियों की नस्ल में उत्पादकता की कमी के अलावा अनेकों अन्य विशेषताएँ हैं जिनके कारण ये ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विदेशी नस्लों की अपेक्षा उपयुक्त और लोकप्रिय हैं। यहाँ के वातावरण में सदियों से पलती रहने के कारण इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता ज्यादा है तथा आर्द्र–उष्मीय प्रकोप को सहने में सक्षम हैं। इनमें घूम–फिरकर अपना भोजन जुटाने की असीम क्षमता होती है, निम्नकोटि के आहार पर जीवन–यापन कर सकती हैं, हल्के तथा फुर्तीले होने के कारण शिकारियों से अपनी रक्षा करने और वंशक्रम चलाने में सक्षम होती हैं। विगत दो–तीन दशकों में परम्परागत मुर्गी पालन की लोकप्रियता में काफी गिरावट आयी है जिनके कई कारणों में सबसे महत्वपूर्ण उच्च उत्पादकता वाली देशी मुर्गी की प्रजातियों का अभाव है। ग्रामीण मुर्गी पालन के लिए विकसित नई किस्म की सभी प्रजातियां (वनराजा, कारी देवेन्द्र, कृष्णा–जे, कृष्णा–प्रिया, ग्राम–प्रिया तथा कारी गोल्ड इत्यादि) विदेशी नस्ल की दो रंगीन प्रजातियों/स्ट्रेन/लाइन के संकरण से बनायी गयी हैं जो ग्रामीण वातावरण के लिए उपयुक्त नहीं हैं। अधिक मांस और अण्डे की उत्पादकता के परोक्ष अवांछित दुष्प्रभाव जैसे–मातृत्व गुण में कमी, शिकारी से आत्म रक्षा में शिथिलता तथा अपेक्षाकृत अधिक शरीर भार तथा छोटे टांग के कारण तेज भागकर अपने शिकारी से बचाव की क्षमता में कमी के कारण ये प्रजातियां किसानों को स्वीकार्य नहीं हैं। ग्रामीण परिवेश के लिए उपयुक्त मुर्गियों के लिए आवश्यक गुण निम्नलिखित हैं :

1. **मुर्गी का रंग :** पक्षी का रंगीन होना आवश्यक है क्योंकि इस प्रकार के पक्षियों की लोकप्रियता के

साथ रंगीन पंख शिकारियों से बचाव में सहायक होते हैं तथा इनमें रोग निरोध क्षमता भी अधिक होती है।

2. **स्वरूप तथा स्वभाव :** खुले क्षेत्रों में पलने के कारण इन मुर्गियों को शिकारियों (कुत्ते और बिल्ली) का डर हमेशा बना रहता है जिससे बचाव के लिए मुर्गी का कम वजनी, लम्बी टांगें, मजबूत पूर्ण विकसित पंख तथा खूंखार लड़ाकू स्वभाव का होना आवश्यक है।

3. **उत्पादकता :** मध्यम दर्जे की मांस और अण्डे उत्पादन की क्षमता वाली मुर्गी उपयुक्त है क्योंकि ग्रामीण वातावरण में खाने के प्राकृतिक स्रोतों का अभाव होता है जिसे जुटाने के लिए जी–तोड़ परिश्रम की आवश्यकता होती है।

4. **रोग–निरोधक क्षमता :** चूंकि पक्षियों को खुले वातावरण में घूम–फिर कर अपना चारा जुटाना होता है तथा गंदी नालियों इत्यादि से कीड़े–मकोड़े खाने पड़ते हैं। अतः इसमें रोग–निरोधक क्षमता का होना अति आवश्यक है।

5. **ग्रीष्म–उष्मीय सहिष्णुता :** ग्रीष्म–उष्मीय वातावरण के दुष्प्रभाव से बचने के लिए प्रकृति–जन्य ग्रीष्म–उष्मीय 'मेंजर जीन्स' का उपयोग लाभप्रद होगा।

6. **स्वजननीय क्षमता :** पिछड़े इलाके में हर वर्ष विकसित नस्ल के चूजों की उपलब्धता सुनिश्चित कराना कठिन कार्य है। अतः यह आवश्यक है कि विकसित प्रजाति में स्वजननीय क्षमता हो।

उन्नत देशी नस्ल की प्रजातियां या देशी और विदेशी नस्ल की संकरवर्ण प्रजातियों में ही उपरोक्त सारे गुण संभव हो सकते हैं। कैरी निर्भीक, कैरी श्यामा, हितकारी, उपकारी इत्यादि कुछ प्रजातियां इस पद्धति के उपयुक्त हैं। इस पद्धति का इन प्रजातियों में उपयोग कर सर्वाधिक लाभ उठाया जा सकता है। इनकी उत्पादन क्षमता ग्रामीण परिवेश में 140 से 180 अण्डे तक है।

संतुलित आहार सम्पूरण

दिन–प्रतिदिन पक्षियों के दाना चुगने के प्राकृतिक संसाधन कम होते जा रहे हैं जिसका कारण है गांवों की सड़कों का पक्का होना, रसोई घर अवशिष्ट सामग्री में कमी, मैदानों में बहुफसल बोना तथा कीटनाशी कृमिनाशी का बढ़ता प्रयोग। इस कारण पक्षियों हेतु आहार का सम्पूरण अत्यंत आवश्यक है। विकसित जनन–द्रव्यों के प्रयोग के साथ ही आहार की गुणवत्ता में सुधार भी जरूरी है। आमतौर पर मौसमी अनाज पक्षियों को खिलाने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। पक्षियों को मिश्रित अनाज जिसमें दलहन और तिलहन भी शामिल हो, खिलाना चाहिए। शाम के समय 30–40 ग्राम/पक्षी आहार प्रतिदिन देना उचित रहता है। यह मात्रा आस–पास उपलब्ध आहार संसाधनों के अनुसार घटाई या बढ़ाई जा सकती है। प्रतिकूल मौसम में पूरा आहार देना अति आवश्यक है।

देशी मुर्गियों का कुड़क (ब्रूडी) होना

यह देखा गया है कि लोग वर्ष भर मुर्गियों से चूजे लेते रहते हैं। इस पद्धति में मुर्गी अत्यंत ब्रूडी हो जाती है। आम तौर से मुर्गी एक क्लच (Clutch) में 12–15 अण्डे देती है और चूजों को सेने हेतु तैयार हो जाती है। अण्डे से चूजे निकलने के बाद मुर्गी एक माह तक उनकी देखभाल करती है और फिर अण्डे देने लगती है। इस प्रकार एक वर्ष में यह चक्र 3–4 बार चलता है और कुल उत्पादन 50 से 60 अण्डा होता है। ब्रूडी होने से बचाने के लिए आवश्यक है कि अण्डों को प्रतिदिन हटा दिया जाये ताकि मुर्गी अण्डों पर न बैठ सके। इस प्रकार वार्षिक उत्पादन में वृद्धि हो सकती है।

चित्र : कारी निर्भीक

पूर्ण सगोत्र संगम

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक बार मुर्गी का जोड़ा खरीद लेने के बाद हर वर्ष घर में ही बच्चे निकाले जाते हैं। बहन–भाई से क्रास बच्चे निकालना पूर्ण सगोत्र संगम (इन–ब्रीडिंग) का सबसे प्रभावशाली तरीका है

जिसके दुष्प्रभाव से अण्डों की संख्या, निषेचन तथा प्रस्फुटन में भारी कमी तथा बच्चों की मृत्यु दर में काफी वृद्धि परिलक्षित होती है। अगर संभव हो तो पुराने स्टॉक को उचित संकर नस्ल से बदल देना चाहिए। अगर घर पर ही चूजे निकालना आवश्यक हो तो प्रयोग किए जाने वाले मुर्गे के स्थान पर दूसरे गाँव या क्षेत्र से प्रति वर्ष नए कुक्कुट पालकों से मुर्गे लेकर बदल लेना चाहिए। इस विधि से विषम युग्म के कारण अण्डा उत्पादन, उर्वरता और प्रजनन क्षमता में वृद्धि के साथ–साथ चूजों की मृत्यु दर में कमी आती है।

चित्र : कारी श्यामा

बीमारियों की रोकथाम

ग्रामीण कुक्कुट पालन के लिए कुक्कुट बीमारियों के दुष्प्रभाव के कारण होने वाली भारी मृत्यु दर एक तबाही है। घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन हेतु आम कुक्कुट बीमारियों का टीकाकरण तथा रानीखेत बीमारी के लिए विशेष रूप से आवश्यक है परन्तु प्रत्येक गाँव में छोटी मात्रा में चूजों का संसेचन टीकाकरण के रास्ते में एक बड़ी बाधा है। चूजों का संक्रमण संसेचन टीकाकरण कार्यक्रम को सफल बनाने में सहायता कर सकता हैं पुराने चूजों को एक सप्ताह तक रानीखेत एफ–1 टीका दिया जा सकता है। अगर एक अथवा दो–तीन गाँवों में अधिक मात्रा में चूजे निकलते हैं और इसके लिए टीका लगाने वाले को तुरन्त सूचना दी जाती है, ऐसी स्थिति में आसानी से अन्य प्रयोग किये जाने वाले टीकों सहित टीकाकरण सुचारु रूप से किया जा सकता है। उससे टीकाकरण पर आने वाला खर्च भी कम होता है। अतः पूरे वर्ष चूजे निकालने के स्थान पर सितम्बर से नवम्बर तथा फरवरी से मार्च के मध्य उचित महीनों में दो या तीन बार चूजा निकालना चाहिए। इन महीनों में देशी मुर्गियां भी उच्चतम उत्पादन करती हैं जिससे सेने योग्य अण्डे काफी मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं। समय–समय पर मुर्गी समूह को कीड़े मारने की दवा एवं कॉक्सीडियोसिस से बचाव हेतु खुराक देने से बीमारियों की रोकथाम करने में मदद तो मिलती ही है साथ ही समूह का उत्पादन भी बढ़ जाता है।

चित्र : हितकारी

प्रशिक्षण

घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन करने वाले कृषकों को एक सप्ताह का प्रशिक्षण देने से उन्हें मुर्गी समूह के प्रबंध एवं बीमारियों की रोकथाम हेतु वैज्ञानिक विधियों की जानकारी से भी अवगत कराया जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन में उल्लेखनीय सुधार की आशा की जाती है।

चित्र : स्थानीय सामग्रीयों से तैयार कम लगत के मुर्गी दड़बे

आशा है की पाठकों खासकर ग्रामीण मुर्गी पालकों को इस लेख के माध्यम से बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु यथा संभव जानकारी मिल पायेगी तथा इस पद्धति के माध्यम से अंडा एवं मुर्गी मांस के उत्पादकता में बढ़ोत्तरी लेते हुए अपनी तथा अपने परिवार को खुशहाल बना पाएंगे।

जीवन में दूध का महत्व

अनुराधा कुमारी[1] एवं नीरज कुमार सिंह[2]
[1]गव्य रसायन विभाग, संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, बि.प.वि.विवि. पटना
[2]पशु चिकित्सा जैव रसायन, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, किशनगंज, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेपः
दूध में फैट, प्रोटीन, लाक्टोज, विटामिन, मिनरल जैसे सभी जरूरी पोषक तत्व मौजूद होते हैं। यह शरीर के निर्माण के लिए आवश्यक प्रोटीन, हड्डियों को मजबूत बनाने वाले खनिज और स्वास्थ्य देने वाले विटामिन, लैक्टोज और उच्च श्रेणी की वसा और ऊर्जा प्रदान करता है। आवश्यक फैटी एसिड की आपूर्ति के अलावा इसमें आसानी से पचने और आत्मसात हो जाने योग्य पोषक तत्व होते हैं। ये सभी गुण बढ़ते बच्चों, गर्भवती माताओं, किशोरों, वयस्कों, और मरीजों के लिए दूध को एक महत्वपूर्ण भोजन बनाते हैं।

सूचक भाब्दः दूध, फैट, प्रोटीन, लैक्टोज, मिनरल।

परिचय :
दूध को संपूर्ण आहार माना जाता है, क्योंकि इसमें मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक बुनियादी पोषक तत्व मौजूद होते हैं। यह सबसे अधिक उपभोग किए जाने वाले संतुलित पौष्टिक आहार में से एक है। यह जीवन का पहला आहार है और इसका सेवन सभी आयु वर्ग के लोग प्रतिदिन करते है। दूध में शारीरिक विकास के लिए आवश्यक प्रोटीन, ऊर्जा वर्धक फैट/वसा एवं लैक्टोज, अच्छी स्वास्थ्य देने वाले विटामिन और हड्डी बनाने वाले मिनरल जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस इत्यादि उचित मात्रा में पाए जाते हैं। इसमे आवश्यक फैटी एसिड एवं अमीनो एसिड के अलावा, उपरोक्त पोषक तत्व आसानी से पचने योग्य और सुलभ रूप में होते हैं। इसलिए दूध, गर्भवती माताओं, बढ़ते बच्चों, किशोरों, वयस्कों, विकलांगों, स्वास्थ्य लाभ प्राप्त रोगियों के लिए एक महत्वपूर्ण भोजन है। दूध में पाए जाने वाले पोषक तत्व जैसे फैट/वसा, प्रोटीन, लैक्टोज, विटामिन, मिनरल इत्यादि की विशेषताओ का विस्तार रूप में विवरण किया गया है, जो इस प्रकार हैः

मिल्क फैट :
फैट भोजन के बनावट, स्वाद और फ्लेवर में योगदान देता है । मिल्क फैट ऊर्जा और आवश्यक फैटी एसिड के साथ–साथ फैट में घुलनशील विटामिन जैसे; A, D, E, और K को अपने साथ रखता है। फैट (9kcal/g), कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन (4kcal/g) की तुलना में ज्यादा ऊर्जा प्रदान करता है। मिल्क फैट में लगभग 65% सैचुरेटेड फैटी एसिड, 32% मोनोअनसैचुरेटेड फैटी एसिड और 3% पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड होते हैं। हलाकि मिल्क फैट में सैचुरेटेड फैटी एसिड ज्यादा होते है लेकिन मवेशियों का मिल्क फैट लघु और मध्यम–श्रृंखला वाले फैटी एसिड के रूप में होता है जिसकी वजह से ये शरीर में आसानी से पचने के उपरांत अवशोषित हो जाते हैं। शरीर को कुछ आवश्यक फैटी एसिड जैसे लिनोलिक (C18:2) और लिनोलेनिक (C18:3) एसिड की आवश्यकता होती है जिन्हें शरीर द्वारा संश्लेषित नहीं किया जा सकता है। मिल्क फैट आवश्यक फैटी एसिड (विशेष रूप से C18:2) का एक स्रोत है। इन फैटी एसिड का उपयोग लंबी श्रृंखला वाले फैटी एसिड एराकिडोनिक एसिड, ईकोसापेंटेनोइक एसिड, डोकोसापेंटेनोइक एसिड को संश्लेषित करने के लिए किया जाता है। ये फैटी एसिड प्रोस्टाग्लैंडिंस, थ्रोम्बोक्सेन और ल्यूकोट्रिएन जैसे हार्मोन के संश्लेषण के लिए आवश्यक हैं जो रक्त के थक्के जमने, मांसपेशियों के संकुचन और शरीर के प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में शामिल होते हैं।

मिल्क प्रोटीन :
मिल्क प्रोटीन में 80% केसीन और 20% व्हेय प्रोटीन होता है। मिल्क प्रोटीन में उच्च पोषक और उल्लेखनीय औषधीय महत्व होता है। केसीन कैल्शियम और जिंक के अवशोषण को बढ़ाता है। मिल्क प्रोटीन को उच्च गुणवत्ता वाला प्रोटीन माना जाता है क्योंकि इसमें हमारे शरीर के विकास के लिए सभी 9 आवश्यक अमीनो एसिड उचित मात्रा में होते हैं। नौ आवश्यक अमीनो एसिड में से तीन ब्रांच्ड–चेन अमीनो एसिड (बीसीएए) के रूप में होते हैं। मिल्क प्रोटीन में ब्रांच्ड–चेन अमीनो एसिड (ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन और वेलिन) की मात्रा कई अन्य खाद्य स्रोतों की तुलना में ज्यादा होती है। व्हेय प्रोटीन ब्रांच्ड–चेन अमीनो एसिड का एक अच्छा स्रोत है। एथलीटों के लिए ल्यूसीन ब्रांच्ड–चेन अमीनो एसिड मानसिक थकान को रोकने और मांसपेशियों की रिकवरी के लिए बहुत फायदेमंद है, यह प्रोटीन के टूटने को रोकता है, मांसपेशियों के विकास को बढ़ाता है, कसरत

के बाद मांसपेशियों के दर्द को कम करता है। मिल्क प्रोटीन शरीर की रोग प्रतिरोधक झमता को बढाता है, रोगाणुरोधी प्रभाव, कैंसर विरोधी प्रभाव, उच्चरक्तचापरोधी, कोलेस्ट्रॉल कम करने में भी योगदान देता है।

लैक्टोज :

दूध में प्रमुख रूप से लैक्टोज कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। लैक्टोज एक डाइसैकराइड शुगर है जोकि ग्लूकोज और गैलेक्टोज दो तरह के शुगर से बना होता है और डाइसैकराइड होने की वजह से दोगुनी ऊर्जा पैदा करता है। लैक्टोज प्राकृतिक रूप से केवल स्तनधारी दूध में मौजूद होता है। यह ऊर्जा के साथ–साथ मीठापन स्वाद प्रदान करता है। लैक्टोज शरीर में कैल्शियम, फॉस्फोरस और मैग्नीशियम जैसे विभिन्न खनिजों के अवशोषण को बढ़ावा देता है। लैक्टोज पेट में लैक्टोबैसिलस प्रजातियों के विकास को बढ़ाता है। इस प्रकार यह आंतों में अच्छे फायदेमंद माइक्रोफ्लोरा को बनाए रखता है और शरीर को नुकसान करने वाले जीवाणुओं को वृद्धि को रोकता है।

खनिज :

दूध फास्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, जिंक और साइट्रेट जैसे लगभग सभी आवश्यक खनिजों का एक अच्छा स्रोत है, हालांकि इसमें आयरन की कमी होती है। कैल्शियम और फास्फोरस दांतों और हड्डियों के लिए महत्वपूर्ण खनिज हैं। दूध कैल्शियम का बहुत अच्छा स्रोत है, गाय और भैंस के दूध में कैल्शियम की मात्रा लगभग 120 से 180 मिलीग्राम/100 मिलीलीटर होती है। दूध और दूध उत्पादों का कैल्शियम शरीर में आसानी से अवशोषित हो जाता है। मिल्क प्रोटीन केसीन और लैक्टोज शरीर में कैल्शियम के अवशोषण को बढ़ाते हैं। कैल्शियम हार्मोन स्राव, सामान्य हृदय गति रखरखाव, रक्त का थक्का जमना, मांसपेशियों में संकुचन और एंजाइम सक्रियण को नियंत्रित करता है। मैग्नीशियम कई शारीरिक कार्यों जैसे मांसपेशियों में संकुचन, प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड चयापचय और न्यूरोमस्कुलर ट्रांसमिशन, हड्डी की वृद्धि जैसे कार्यो में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विटामिन :

विटामिन दो तरह के होते है, फैट में घुलनशील विटामिन और पानी में घुलनशील विटामिन। विटामिन A, D, E, और K फैट में घुलनशील विटामिन हैं। विटामिन बी कॉम्प्लेक्स यानी विटामिन बी1 (थियामिन), विटामिन B–2 (राइबोफ्लेविन), नियासिन, बायोटिन, पैंटोथेनिक एसिड, विटामिन B–6, फोलिक एसिड, विटामिन B–12 (सायनोकोबालामिन) और विटामिन–C पानी में घुलनशील विटामिन हैं। दूध में मानव पोषण और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक सभी तरह के विटामिन मौजूद होते है। दूध अधिकांशतः विटामिन–A और विटामिन–B का एक अच्छा स्रोत है। मिल्क फैट का पीला रंग कैरोटीन के कारण होता है और व्हेय का पीला–हरा रंग राइबोफ्लेविन के कारण होता है। राइबोफ्लेविन प्रोटीन, फैट और कार्बोहाइड्रेट को तोड़कर ऊर्जा उत्पादन में मदद करता है और यह शरीर द्वारा ऑक्सीजन की उपयोगिता में मदद करता है। विटामिन–A आँख की दृष्टि के लिए आवश्यक है। विटामिन–E एक बहुत प्रभावी एंटीऑक्सीडेंट है, यह विटामिन–A और अनसैचुरेटेड फैटी एसिड के ऑक्सीकरण को रोकता है, शरीर को विषाक्त पेरोक्साइड से बचाता है। यह शरीर में प्रजनन और वृद्धि के लिए आवश्यक है और लीवर की क्षति को रोकता है। सामान्य रक्त के थक्के जमने के लिए विटामिन–K महत्वपूर्ण है। दूध विटामिन B–कॉम्प्लेक्स का अच्छा श्रोत है। विटामिन B–1 सामान्य भूख और पाचन के लिए आवश्यक है और तंत्रिका तंत्र के समुचित कार्य के लिए जिम्मेदार है। दूध में पर्याप्त फोलिक एसिड और विटामिन B–12 भी होते है, जो लाल रक्त कोशिकाओं और डीएनए के संश्लेषण के लिए आवश्यक हैं।

निष्कर्ष

शरीर के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों से भरपूर दूध का सेवन कर हम अपने शरीर को स्वास्थ्य एवं तन्दुरुस्त बना सकते है साथ ही साथ बच्चो से लेकर वयस्कों एवं बुजुर्गो को दूध एवं दूध से बने पदार्थो के सेवन के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

मीठे जल की मछलियों में होने वाले रोग, रोकथाम के उपाय एवं उनका उपचार

भारतेन्दु विमल एवं वेद प्रकाश सैनी
मात्स्यिकी महाविद्यालय, किशनगंज, बि.प.वि.विवि. पटना

संक्षेप :
मछलियों में होने वाले रोग, इसके वृद्धि दर एवं इसके उत्पादन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। यहां तक कि मछलियों की दवा महंगी होने के कारण ये मछली उत्पादन में उच्च लागत का कारण बन सकती है। मछली पालकों को अक्सर मछली रोगों के कारण भारी आर्थिक हानियों का सामना करना पड़ता है और इस प्रकार की हानियों को कम करने के लिए, मछली रोगों के रोकथाम और जल स्रोतों में रोगाणुओं के स्तर को कम करने के लिए सावधानियां बरतना महत्वपूर्ण है। इसके लिए तालाब की मिट्टी एवं जल की गुणवत्ता का रखरखाव, मछलियों को पर्याप्त पोषण देकर इसकी रोग निरोधक क्षमता को बनाये रखना और रोगाणुओं के प्रसार का समय से पहले नियंत्रण आवश्यक तत्त्व हैं। अतः मछलियों की उत्पादकता एवं इससे अत्यधिक लाभ लेने के लिए इस लेख में मछलियों के व्यवहारिक, शारीरिक एवं आतंरिक लक्षणों का उल्लेख किया गया है एवं विभिन्न रोगों के संक्रमण को रोकने के लिए उपयुक्त उपचार या नियंत्रण की जानकारियां दी गयीं हैं जिससे एक मछली पालक एवं उद्यमी मछली के रोगों से होने वाले नुकसान को काम कर सकते हैं।

सूचक शब्द – मछलियों में होने वाले रोग, रोगाणु, उपचार, तालाब प्रबंधन।

परिचय :

जल कृषि में आर्थिक नुकसान का सबसे बड़ा एकल और महत्वपूर्ण कारक रोगों की समस्या है। किसी भी रोगों के फैलने का कारण रोगाणु और तालाब पर्यावरण के पारस्परिक सबंधों पर निर्भर करता है, मछलियों में रोगों के प्रमुख घटकों में होने वाला असंतुलन महामारी का रूप ले लेता है. जिससे मछली उत्पादन प्रभावित होता है और मछली पालको को भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है। स्वस्थ तथा सुरक्षित मछली पालन के लिए संचय सघनता, पोषक आहार तथा जलीय गुणवत्ता का सही प्रकार से प्रबन्धन किया जाना चाहिए। अतः अधिक मछली उत्पादक हेतु मछली पालकों को मछली में होने वाले प्रमुख रोगो तथा उनके उपचार की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

रोग ग्रस्त मछली के सामान्य लक्षण :

रोग मुक्त मछलियों का बाह्य आवरण चमकदार एवं साफ होता है तथा इनके शरीर पर धाव नहीं होते है जबकि रोग ग्रस्त मछलियों में अनेक लक्षण देखे जा सकते हैं जिनका वर्णन निम्नप्रकार है;

1. रोग ग्रस्त मछलियों के व्यवहारिक लक्षणः

- मछलियों द्वारा आहार ग्रहण नहीं करना।
- मछलियों का तालाब के किनारों पर एवं सतह पर बार–बार आना
- मछलियों का खरपतवार के नीचे छुपकर रहना।
- मछलियों की विकृत एवं सुस्त तैराकी ।

2. रोग ग्रस्त मछलियों के शारीरिक लक्षणः

- मछलियों के शरीर से अत्यधिक श्लेष्मा निकलता है।
- मछलियों के शरीर का रंग बदरंग हो जाता है।
- मछलियों के शरीर पर अथवा पंखों के नीचे हल्के लाल रंग के घाव दिखाई देते है।
- मछलियों के शरीर के ऊपर सफेद अथवा काले रंग के दाग तथा चकत्ते होते है।
- मछलियों का पेट फूलना, शल्क निकलना अथवा शल्कों के बीच में द्रव जमा हो जाता है।
- मछलियों के पत्रों का टूटना अथवा सड़ना शुरू हो जाता है।
- मछलियों की आँखों में सूजन आ जाती है।

- मछलियों का शरीर छोटा और सिर बढ़ा दिखाई देता है तथा यूथन बढ़ जाते है।
- मछलियों के गलफड़ों का टूटना, सडना तथा इनमें सफेद रंग की ग्रन्थि कोष्ठ दिखाई देते है।
- मछलियों के गलफड़ों का रंग अत्यधिक लाल दिखाई देता है।
- मछलियों के गलफड़ों, शरीर के घाव तथा पंखों पर रुई जैसी संरचना का दिखाई देती है।

3. रोग ग्रस्त मछलियों के आन्तरिक लक्षण

रोग ग्रस्त मछली के शरीर के अन्दर के अंगो पर पाये जाने वाले रोग के लक्षण तथा उनमें परिवर्तन मछलियों को प्रयोगशाला में चीरफाड कर परीक्षण करने पर ही देख सकते हैं।

- मछलियों की आँती एवं शरीर भित्ति के बीच गाढ़ा एवं सड़न युक्त पानी जैसे द्रव का निकलता है।
- मछलियों के यकृत का रंग असामान्य होता है।
- मछलियों के गुर्दों में टूटफूट अथवा सडन होती है।
- मछलियों की आंत में कृमि तथा अन्य परजीवी का मिलना ।
- मछलियों के यकृत, गुर्दे अथवा अन्य आंतरिक अंगों में छोटी–छोटी गांठ (सिस्ट) दिखाई देते है।

मत्स्य रोगों की रोकथाम के उपाय

- तालाब के जलीय वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखे।
- मछलियों का आहार गुणवत्ता युक्त, संतुलित तथा पौष्टिक रखें ।
- मछलियों की संचय सघनता अधिक नही रखे ।
- रोग ग्रस्त मछलियों की पहचान करके उनको अन्य मछलियों से अलग रखें ।
- मत्स्य बीज रोग मुक्त एवं प्रमाणित हो ।
- तालाब में अवांछनिय मछलियों का प्रवेश नही होने दें।
- मात्स्यिकी उपकरणों का समय–समय पर रोगाणुनाशकों से उपचार करे।
- मछलियों की विभिन्न अवस्थाओं को संचय पूर्व रोगाणु नाशकों से उपचार करे ।

मछलियों में होने वाले रोगो के महत्वपूर्ण कारक

- जीवाणु जनित रोग
- परजीवी जनित रोग
- कवक जनित रोग

जीवाणु जनित रोग

1. कालमनेरिस रोग

रोग जीवाणु – फ्लेक्सीबेक्टर कालमनेरिस

रोग की पहचान – शरीर के बाहरी सतह व गलफड़ों में घाव दिखना एवं बाद में त्वचीय उत्तक में पहुंच कर घाव कर देना ।

रोकथाम के उपाय – 0.5 मि.ग्रा. प्रति ली. कापर सल्फेट का घोल पोखरों में डालें ।

उपचार – संक्रमित मछलियों को 4–5 मि.ग्रा. प्रति ली. पोटेशियम परमेगनेट के घोल में 10–15 मिनट तक रखें।

2. बेक्टीरियल हिमारैजिक सेप्टीसिमिया

रोग जीवाणु – ऐरोमोनास हाइड्रोफिला व स्युडोमोनास फ्लुरिसेन्स

रोग की पहचान – शरीर पर फोडे, तथा फूले हुए घाव, त्वचा व मांसपेशियों में क्षय, पंखों के आधार पर घाव

रोकथाम के उपाय – पोखरों में 2–3 मि.ग्रा. प्रति ली. पोटेशियम परमेगनेट का घोल डालें।

उपचार – टेरामाइसिन को भोजन के साथ 65–80 मि.ग्रा. प्रति किलोग्राम भार से 10 दिन तक लगातार दें।

3. ड्रॉप्सी

रोग जीवाणु – ऐरोमोनास हाइड्रोफिला

रोग की पहचान – शल्कों का बहुत अधिक मात्रा में गिरना तथा पेट में पानी भर जाना। यह उन पोखरों में होता है जहां पर्याप्त भोजन की कमी होती है ।

रोकथाम के उपाय – मछलियों को पर्याप्त भोजन देना व पानी की गुणवत्ता बनाए रखें।

उपचार – पोखर में 15 दिन के अंतराल में 100 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से चूना डालें।

i. कालमनेरिस रोग

ii. बेक्टीरियल हिमारैजिक सेप्टीसिमिया

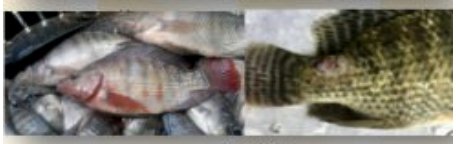

iv. एडवर्डसिलोसिस

v. वाइब्रियोसिस

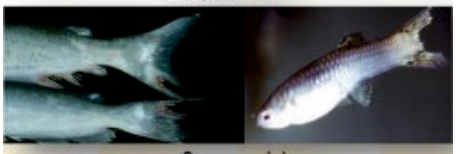

vi. फिनराट एवं टेलराट

4. एडवर्डसिलोसिस रोग

रोग जीवाणु – एडवर्डसिला टारडा

रोग की पहचान – इसे सड़कर गल जाने वाला रोग भी कहते हैं। शल्क गिरने लगते हैं, पेशियों मे गैस से फोड़े बन जाते हैं तथा चरम अवस्था में मछली से दुर्गन्ध आने लगती है ।

रोकथाम के उपाय – पानी की गुणवत्ता बनाए रखना तथा 20 कि. ग्रा प्रति हैक्टर कि दर से जिओलाइट का उपयोग

उपचार – संक्रमित मछली को 0.04 मि.ग्रा. प्रति ली. के आयोडीन के घोल में दो घंटे के लिए रखना चाहिए।

5. वाइब्रियोसिस रोग

रोग जीवाणु – विब्रियो प्रजाति

रोग की पहचान – भोजन के प्रति अरूचि होने के साथ–साथ मछली का रंग काला पड़ जाता है, यह मछली की आँखें सूजन के कारण बाहर निकल आती है व सफेद धब्बे पड़ जाते है।

रोकथाम के उपाय – पानी में 200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर कि दर से चुने का प्रयोग तथा पोखरों में 2–3 मि.ग्रा प्रति ली. पोटेशियम परमैगनेट का घोल डालें।

उपचार – ऑक्सीटेट्रासीक्लीन तथा सल्फोनामाइड को 8–12 ग्राम प्रति किलोग्राम भोजन के साथ मिलाकर देना चाहिए।

6. फिनराट एवं टेलराट

रोग जीवाणु – ऐरोमोनास, स्युडोमोनास फ्लुओरेसेन्स तथा स्युडोमोनास पुटीफेसीन्स

रोग की पहचान – इसमें मछली के पक्ष एवं पूंछ सड़कर गिरने लगती हैं। बाद में मछलियां मरने लगती हैं।

रोकथाम के उपाय – पानी की स्वच्छता आवश्यक है। पोखरों में 200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर प्रति मीटर गहराई की दर से चुने का प्रयोग।

उपचार – एमेक्विल औषधि 10 मि.ली. प्रति सौ लीटर पानी में मिलाकर संक्रमित मछली को 24 घंटे तक घोल में रखना चाहिए।

परजीवी जनित रोग

1. ट्राइकोडिनोसिस

परजीवी – ट्राइकोडीना नामक प्रोटोजोआ

रोग की पहचान – संक्रमित मछली में शिथिलता भार में कमी तथा गलफड़ों से अधिक श्लेष्म सावित होने से श्वसन में कठिनाई होती है।

रोकथाम के उपाय – पोखरों में 200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर कि दर से चुने का तीन–चार किश्तों में साप्ताहिक अंतराल पर प्रयोग।

उपचार – निम्न रसायनों के घोल में संक्रमित मछली को 1–2 मिनट डुबाकर रखें। 15 प्रतिशत सामान्य नमक घोल अथवा 25 पी.पी.एम. (मि.ग्रा प्रति ली.) फार्मेलिन। 0.5 पी.पी.एम. कापर सल्फेट (नीला थोथा) घोल।

i. ट्राइकोडिनोसिस
ii. तन्तुमय कृमिकोषीय रोग
iii. सफेद धब्बेदार रोग
iv. गलफड़ पर्णकृमि कृमि व चर्म पर्णकृमि
v. आर्गुलॉसिस
vi. लँगरनुमा कृमि रोग

2. तन्तुमय कृमिकोषीय रोग

परजीवी – माइक्रो एवं मिक्सोस्पोरीडिया

रोग की पहचान – यह रोग अंगुलिका अवस्था में अधिक होता है, ये कोशिकाओं मे तन्तुमय कृमिकोष बनाकर रहते हैं तथा उत्तकों को भारी क्षति पहुंचाते हैं। यह रोग मछली के गलफड़ों व चर्म को संक्रमित करता है।

रोकथाम के उपाय – तालाब की तलहटी से गाद को कम करें एवं पानी की गुणवत्ता बनाए रखें।

उपचार – इनकी रोकथाम के लिए कोई औषधि पूर्ण लाभकारी सिद्ध नहीं हुई है। अतः रोगग्रस्त मछली को बाहर निकाल देते हैं और मत्स्य बीज संचयन के पूर्व चुना, ब्लीचिंग पावडर से पानी को रोगाणुमुक्त करते हैं।

3. सफेद धब्बेदार रोग

परजीवी – इक्थियोफ्थीरियस प्रोटोजोआ

रोग की पहचान – इसमें मछली की त्वचा, पख व गलफड़ों पर नमक के दाने जैसे छोटे सफेद धब्बे हो जाते हैं। ये उत्तको में रहकर उत्तकों को नष्ट कर देते हैं।

रोकथाम के उपाय – पोखर में 15 से 25 पी.पी.एम. फार्मलिन हर दूसरे दिन रोग समाप्त होने तक डालते रहें। तालाब में बाहर के खेतों से पानी का आवागमन रोकें एवं पानी की गुणवत्ता बनाए रखें।

उपचार – 0.1 पी.पी.एम. मेलाकाइट ग्रीन एवं 50 पी.पी.एम. फार्मलिन के घोल में 2–3 मिनट तक मछली को रखें।

4. गलफड़ पर्णकृमि कृमि व चर्म पर्णकृमि

परजीवी – डेक्टाइलोगायरस व गाइरोडेक्टाइलस

रोग की पहचान – डेक्टाइलोगायरस मछली के गलफड़ों को संक्रमित करते हैं इससे ये बदरंग, शरीर की वृद्धि में कमी व भार में कमी जैसे लक्षण दर्शाते है, जबकि गाइरोडेक्टाइलस त्वचा पर संक्रमित भाग की कोशिकाओं में घाव बना देता है, जिससे शल्कों का गिरना, अधिक श्लेषक एवं त्वचा बदरंग हो सकती है।

रोकथाम के उपाय – तालाब में मेलाथियान 0.25 पी.पी.एम. सात दिन के अंतर में तीन बार छिड़काव करें। पानी की गुणवत्ता बनाए रखें।

उपचार – 1 पी.पी.एम. पोटेशियम परमेगनेट के घोल में 30 मिनट तक रखें अथवा ऐसिटिक एसिड एवं 2 प्रतिशत नमक के घोल (क्रमशः 12 एवं 2 के अनुपात में) बारी–बारी से 2 मिनट के लिए डूबायें।

5. आर्गुलोसिस

परजीवी – आर्गुलस

रोग की पहचान – यह मछली की त्वचा पर गहरे घाव कर देते हैं, जिससे त्वचा पर फफूंद व जीवाणु आक्रमण कर देते हैं मछलियां मरने लगती है।

रोकथाम के उपाय – तालाब की तलहटी से गाद को कम करें एवं पानी की गुणवत्ता बनाए रखें। मछलियों के पाँख पर यह परजीवी दिखते ही पोखरों में सुखी लकड़ियों की टहनियों को तालाब में डालें एवं प्रत्येक तीन दिन में इसे हटाकर नयी टहनिंयों को डालें या इन टहनियों को अच्छी तरह से धोकर इस प्रक्रिया को लगभग 30 दिनों तक दोहराएं।

उपचार – 0.25 पी.पी.एम. मेलेथियान को 1–2 सप्ताह के अंतराल में 3 बार उपयोग करें अथवा 5 पी.पी.एम.पोटेशियम परमेगनेट के घोल में 1 मिनट के लिए डूबायें।

6. लँगरनुमा कृमि रोग

परजीवी – लरनिया

रोग की पहचान – मछली की त्वचा पर लंगरनुमा कृमि देखे जा सकते हैं। यह मछली की त्वचा पर गहरे घाव कर देते हैं व कालांतर में मछलियां मरने लगती हैं।

रोकथाम के उपाय – उपरोक्त आर्गुलोसिस में वर्णित सभी।

उपचार – उपरोक्त आर्गुलोसिस में वर्णित सभी।

कवक जनित रोग

1. सेप्रोलिग्नीयोसिस रोग

कवक – सेप्रोलिग्नीया पैरासिटिका

रोग की पहचान – यह रोग सामान्यतया जाल चलाने तथा परिवहन के दौरान मत्स्य बीज के

घायल हो जाने से होता है तथा त्वचा पर सफेद जालीदार सतह बनाता है।

लक्षण – रोगग्रस्त भाग पर रुई समान गुच्छे उभर आते है। पैक्टोरल फिन एवं काडलफिन के जोड़ पर खून जमा हो जाता है। मछली कमजोर तथा सुस्त हो जाती है।

रोकथाम के उपाय – 1 प्रतिशत भाग पोटाश के घोल का तालाब में छिड़काव ।

उपचार – 3 प्रतिशत नमक का घोल या कैल्शियम सल्फेट के घोल में 5 मिनट तक डुबोने तथा इस रोग के समाप्त होने तक दोहराने से लाभ होता है।

2. गलफड़ों का सड़न

कवक – ब्रांकिओमाइसिस

रोग की पहचान – इसका आक्रमण गलफड़ो पर होता है, जिससे गलफड़े रंगहीन हो जाते हैं जो कुछ समय उपरांत सड़–गल कर गिरने लगते हैं।

रोकथाम के उपाय – पोखर में 15 – 25 मि.ग्रा. प्रति ली. की दर से फार्मिलिन डालें।

उपचार – 250 मि.ग्रा. प्रति ली. का फार्मिलिन घोल बनाकर मछली को स्नान दें अथवा 3 प्रतिशत सामान्य नमक के घोल मछली को विशेषकर गलफड़ों को धोएं अथवा 1–2 मि.ग्रा. प्रति ली. कापर सल्फेट (नीला थोथा) के घोल से उपचार करें।

3. अल्सर रोग

कवक – अफानोमिसिस इनवाडेन्स

रोग की पहचान – इस रोग के फैलने में अनेक कारक अपना योगदान देते हैं, लेकिन इसका मुख्य कारक फंगस (फफूंद) को माना गया है। यह रोग पोखर जलाशय तथा नदी में रहने वाली मछलियों में फैल सकता है, परन्तु इस रोग का प्रकोप खेती की जमीन के समीपवर्ती तालाबों में ज्यादा देखा गया है, प्रारंभ में त्वचा पर रक्त के थक्कों के साथ–साथ धब्बे दृष्टिगोचर होते है जो कालांतर में खुले घाव हो जाते हैं एवं सभी मछलियां मरने लगती है।

रोकथाम के उपाय – तालाब के किनारे यदि कृषि भूमि है तो तालाब के चारों ओर बाँध बना देना चाहिये, ताकि कृषि भूमि का जल सीधे तालाब में प्रवेश न करें वर्षा के बाद जल का पी.एच. देखकर या कम से कम 200 किलो चूने का उपयोग करना चाहिए।

i. सेप्रोलिग्नीयोसिस
ii. ब्रांकिओमाइसिस
iii. अल्सर रोग

उपचार – तालाब में कली का चूना (क्विक लाइम) 600 किलो प्रति हैक्टर प्रति मीटर गहराई के जलस्तर की दर से जल में तीन सप्ताहिक किश्तो में डालें अथवा चूने के उपयोग के साथ–साथ प्लीचिंग पाउडर 1 पी.पी.एम. अर्थात 10 किलोग्राम प्रति हेक्टर प्रति मीटर की दर से तालाब में डालें। कम मात्रा में या छोटे पोखर में 0.5 से 2.0 मि.ग्रा. प्रति ली. पोटेशियम परमैगनेट के घोल डालें अथवा 1 लीटर सिफैक्स का प्रयोग प्रति हेक्टर प्रति मीटर गहराई के जलस्तर की दर से पानी का उपचार करें।

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की प्रसार गतिविधियां

अरविन्द कुमार ठाकुर एवं योगेन्द्र सिंह जादौन
प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की प्रसार गतिविधियां: एक नजर

प्रसार शिक्षा परिषद की बैठक	आई.डी.डब्ल्यू.जी के साथ बैठकें
प्रशिक्षण कार्यक्रम	इनपुट वितरण कार्यक्रम (पोल्ट्री बीज, खनिज लवण)
प्रदर्शन	किसान मेला
किसान दिवस	पशुपालन मेला
किसान परामर्श	किसान संवाद
खाद्य प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन	समेकित कृषि प्रणाली
अंतः प्रादेशिक किसान भ्रमण	फोन कॉल
व्हाट्सएप के द्वारा जानकारी	पशु स्वास्थ्य शिविर
बाढ़ राहत कार्यक्रम	ग्राम को गोद लेना
टीकाकरण कार्यक्रम	किसान गोष्ठी
प्रदर्शनी	क्षेत्र दिवस
कार्यशाला	किसान सेमिनार
जनजातीय समुदाय कुकुट वितरण कार्यक्रम को पूंजीगत सहायता	समूह बैठकें
पशु स्वास्थ्य अभियान	अन्य संस्थान सहयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रम
टीवी/रेडियो कार्यक्रम (दूरदर्शन व अन्य चौनलों में कृषि/पशुपालन पर आधारित संवाद कार्यक्रम)	प्रशिक्षण में रिसोर्स पर्सन के रूप में भाग लेना
रिलायंस फाउंडेशन के साथ पशुपालकों के मदद हेतु समझौता ज्ञापन	भा.कृ.अ.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना के साथ समझौता ज्ञापन
अटारी, पटना; नाबार्ड; बिहार कृषि विवि., डॉ. आर.पी.सी.ए.यु., पूसा; पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग; जीविका; पटना डेरी प्रोजेक्ट; कोम्फेड; बामेती के साथ संयोजन कर किसानों/पशुपालकों का प्रशिक्षण	राष्ट्रीय गोकुल मिशन के तहत चलंत स्वावलंबी कृत्रिम गर्भाधानकर्ता हेतु मैत्री प्रशिक्षण का आयोजन
वेटरनरी इमरजेंसी रेस्पोंस यूनिट के तहत आपदा में पशुओं के बचाव हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम	आपदा में पशुओं के उपचार एवं प्रबंधन हेतु किसानों/पशुपालकों को सहायता प्रदान करना
प्रसार सामग्री का प्रकाशन एवं वितरणः फोल्डर, पत्रक, बुकलेट, प्रशिक्षण मैन्युअल, इत्यादि	ऑनलाइन प्रशिक्षण कार्यक्रम

त्रैमासिक पत्रिका
पशुपालन दर्शिका
वर्षः 1, अंकः 2, अक्टूबर-दिसम्बरः 2023

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY

प्रकाशक
प्रसार शिक्षा निदेशालय
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
पटना– 800014 (बिहार)

Diksha Art & Prints
+91-9431436534
ISO: 19001:2015